ा प्रसाद)
ना॥
ाट्ट

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

M[6]2 १४/१०/८२


संस्कृत सुषमा

3ξ

Harishankar Shastri
Bed
H.D.C. Varanasi

Jagadish Prasad

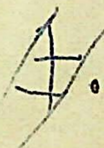
IX C

Queen's college

Varanasi

Sanaskrit | Susama

Harishanker Shastri
H.D. Degree college
Varanasi





संस्कृत-सुषमा

—:o:—

लेखक

डा० आद्याप्रसाद मिश्र

एम० ए०, डी० फिल्०, शास्त्री

संस्कृत विभाग,

प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

—:o:—

SRIKANT MISHRA

प्रकाशक

विद्या भवन

खजान्ची रोड

पुस्तक-प्राप्ति स्थान—

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद–२

एकादश संस्करण] १९६८ [मूल्य रु० १·१० पैसे

मुद्रक
विजय कुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस, प्रयाग

दो शब्द

संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है। भारत की सबसे प्राचीन भाषा तो यह है ही, साथ ही उसकी सर्वाधिक प्राचीन सांस्कृतिक भाषा भी यही है। अतः यदि अपनी प्राचीन संस्कृति का स्वरूप जानना है और यदि अपने देश की अन्तरात्मा का साक्षात्कार करना है, तो सहस्रों वर्ष पूर्व इनकी अभिव्यक्ति करने वाले आदि-कवि वाल्मीकि और महाभारतकार व्यास, कविकुल-गुरु कालिदास एवं करुण-गिरा-गरिष्ठ भवभूति की भव्य भाषा संस्कृत का अध्ययन करना अनिवार्य है। यह अध्ययन जितना ही अनिवार्य या अपेक्षित वयस्कों के लिए है, उतना ही या उससे भी अधिक छोटों के लिए है, क्योंकि छुटपन के पड़े हुए सत् संस्कार अमिट होने के कारण चरित्र-निर्माण में सबसे अधिक सहायक होते हैं।

प्रस्तुत संकलन इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया गया है। नवम तथा दशम कक्षाओं में संस्कृत लेने वाले बालकों के लिए अभिप्रेत होने के कारण इस संकलन के पाठों का संग्रह करने में इस बात का ध्यान रक्खा गया है कि नैतिकता को प्रोत्साहित करने वाली उपादेय और हितकर सामग्री ही दी जाय और वह भी सरल तथा सुबोध भाषा में एवं भरसक मनोरंजन के साथ। इसीलिए जहाँ कालिदास एवं भवभूति की उच्च कोटि की कलात्मक कृतियों से छात्रों का साक्षात्कार परिचय वाञ्छनीय समझकर उनके अवतरणों को इस संकलन में स्थान दिया गया, वहाँ वे ही अवतरण दिये गये हैं जिनकी उपयुक्तता और उपयोगिता दोनों ही बहुत अधिक है। जैसे कालिदास के 'रघुवंशम्' से 'दिलीप की गो-सेवा' का वर्णन दिया गया है, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से इसका मूल्य अति प्राचीन काल से ही गो-पूजक तथा कृषि-प्रधान भारत देश के लिए कितना अधिक है, वह विना कुछ कहे ही जाना जा

सकता है। साथ ही यह प्रकरण वहुत ही सरस, फिर भी सुबोध भाषा में है। भवभूति के 'उत्तररामचरितम्' से दो प्रकरण लिये गये हैं। एक तो केवल वर्णनात्मक है और विनोद-पूर्ण होने से बालकों की प्रकृति के विशेष अनुकूल जानकर रक्खा गया है। साथ ही निर्भीक तथा साहसी बनने की प्रेरणा भी राजकुमार लव के कथनों एवं कार्यों से प्राप्त होती है; दूसरा प्रकरण इसी नाट्य-कृति के अन्तिम अंक का संक्षिप्त रूप है जो भवभूति की लम्बी समास-पदवाली से सर्वथा रहित होने के कारण अप्रौढ़ बालकों के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। बालकों के परम प्रिय 'अद्भुत्' रस तथा मानव-हृदय को सबसे अधिक प्रभावित एवं शद्ध करने वाले 'करुण' रस का इसमें अद्भुत सम्मिश्रण हैं।

कादम्बरी जसे कठिन गद्य-काव्य से भी ऐसा अवतरण लिया गया है जिसके दो ही वाक्य दो-दो पंक्ति के होंगे, शेष सभी तीन-तीन चार-चार शब्दों के छोटे-छोटे वाक्य हैं। इस अवतरण में असंस्कृत तथा बर्बर जीवन का वर्णन है जो विविधता की दृष्टि से रक्खा गया है, क्योंकि एक ही प्रकार के वर्णन अच्छे होने पर भी उबाने वाले होते हैं। इसके अतिरिक्त इस पाठ में ऐसे जीवन के प्रति घृणा तथा विरक्ति का भाव प्रकट होने के कारण बालकों की नैतिकता पर भी परोक्ष-रूप से इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

पञ्चतंत्र, कथा-सरित्-सागर, भोज-प्रबन्ध इत्यादि प्रसिद्ध प्राचीन कथा-ग्रन्थों से वे ही कथाएँ ली गई हैं जो लम्बी नहीं हैं और बालकों की मनो-वृत्ति पर अच्छा प्रभाव डालती हैं। इसी प्रकार रामायण, महाभारत, गीता, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों से नैतिक आचार के उदात्त उपदेशों से भरे वे ही प्रसङ्ग लिये गये हैं, जो न तो नीरस हैं और न लम्बे।

पर इस संकलन की सबसे वड़ी विशेषता यह है कि कालिदास के 'पुराण-मित्येव न साधु सर्वं, न चापि सर्वं नवमित्यवद्यम्' सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए इसमें प्राचीन के साथ 'सत्' नवीन का भी समन्वय किया गया है। महा-महोपाध्याय पं० कृष्णस्वामी शास्त्री के 'भूगोल-शास्त्रम्' से 'जल' पर एक

सुगम और छोटा सा निवन्ध लिया गया है। बीसवीं शताब्दी के संस्कृत-साहित्य-मर्मज्ञ पं० मूलशंकर माणिक्यलाल याज्ञिक द्वारा लिखित 'प्रताप-विजयम्' नाटक से भी एक प्रकरण रक्खा गया है जो वचपन से ही परिचित महाराणा प्रताप की विजय के विषय में होने के कारण शायद वालकों के अधिक मनोनुकूल पड़े।

इसके अतिरिक्त जिन आधुनिक विषयों पर संस्कृत में निवन्ध नहीं मिलते पर जिनका ज्ञान संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थियों को उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार अन्य भाषायें पढ़नेवालों को होता है, उन पर लेखक ने स्वयं ही सरल तथा सुबोध भाषा में निवन्ध प्रस्तुत किये हैं। विद्युत्, पांचवर्षिकी योजना, राष्ट्रध्वज तथा महात्मा गान्धी के सत्याग्रह-मार्ग पर लिखे गये निवन्ध इसी प्रकार के हैं। इनसे बालकों का सामान्य ज्ञान तो वढ़ेगा ही, साथ ही राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेम के भाव भी जागृत होंगे।

वाल्मीकि, विश्वामित्र तथा परीक्षित् पर लिखे गये लेख भी देश के प्राचीन स्वनाम-धन्य ब्रह्मर्षियों तथा राजर्षियों की पवित्र कथाएँ हैं जो उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करके तप, त्याग तथा पुरुषार्थ का उच्च आदर्श उपस्थित करती हैं।

इस प्रकार इस संग्रह को सर्वथा उपादेय बनाने के यथासम्भव सभी प्रयत्न किये गये हैं। आशा है, छात्रों का इससे अधिकाधिक कल्याण होगा।

—लेखक

विषय-सूची

संस्कृत-सुषमा

प्रथमः पाठः

पूजा-पुष्पाञ्जलिः

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये
स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ १ ॥

त्रैलोक्यशल्योद्धरणाय सिन्धो-
श्चकार बन्धं मरणं रिपूणाम् ।
पुण्यप्रणामं भुवनाभिरामं
रामं विरामं विपदामुपासे ॥ २ ॥

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥३॥

गिरामाहुर्देवीं द्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नी पद्मां हरसहचरीमद्रितनयाम् ।
तुरीया कापि त्वं निखिलनिगमोद्गीतचरिता
महामाये ! विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी ।।४।।

आलम्बे जगदालम्बं हेरम्बचरणाम्बुजम् ।
शुष्यन्ति यद्रजः स्पर्शात् सद्यः प्रत्यूहवार्धयः ।।५।।

यत्कृपालवमात्रेण मूको भवति पण्डितः ।
वेदशास्त्रशरीरां तां वाणीं वीणाकरां भजे ।।६।।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—तृतीय श्लोक के आधार पर भगवान् कृष्ण पर संस्कृत में पाँच वाक्य बनाइए ।

२—द्रुहिणगृहिणीम्, रजःस्पर्शात् तथा वीणाकराम् का विग्रह करके समास-नाम दीजिए ।

३—ऊपर किन-किन देवताओं की स्तुति की गयी है ? इनमें जो स्तुति अधिक अच्छी लगती हो, उसे कण्ठस्थ कीजिए ।

द्वितीयः पाठः

हरस्वामिकथा

अस्ति गंगाकूले कुसुमपुरं नाम नगरम् । तत्रासीत् हरस्वामी नाम तीर्थार्थी कश्चित्तापसः । स भिक्षाशनो विप्रः गङ्गातीरे कृताश्रमः तपसः समुत्कर्षात् लोकानां विशेषेण गौरवास्पदमभूत् । कदाचित्तं भिक्षाविनिर्गतं दूरात् दृष्ट्वा कश्चित्तद्गुणासहिष्णुः खलो जनमध्यात् जगाद--यूयं कच्चित् जानीथ, अयं कीदृक् कपटतापसः? अनेनैव अमुष्मिन्नगरे सर्वे शिशवो भक्षिताः । तदाकर्ण्य द्वितीयो जनस्तथैव समभ्यधात्--सत्यं, मयाऽपि श्रुतं जनैरुच्यमानमेतदिति । तृतीयस्तथैव एवमेतदिति प्राह । दुर्जनसंवादशृङ्खला आर्यपरिवादं बध्नाति हि । एवं क्रमेण एष परिवादः सर्वत्र पुरे बहुलीभवन् कर्णपरम्परामाससाद । पौराश्च सर्वे 'हरस्वामी बालान् भक्षयति' वदन्तो गेहात् स्वान् स्वान् बालान् न तत्यजुः । ततश्च सर्वे ब्राह्मणाः सन्ततिक्षयभीरवः सम्भूय तस्य पुरात् प्रवासनममन्त्रयन् । कुपितः सोऽस्मान् ग्रसेदिति भयेन ते साक्षात् वक्तुमशक्नुवन्तो दूतान् व्यसर्जयन् । ते च गत्वा दूता दूरादेव तमब्रुवन्--'ब्रह्मन् ! नगरादस्मात् गम्यतामि' ति

द्विजातयस्त्वां कथयन्ति। अथ तेन विस्मितेन किन्निमित्तमित्युक्तास्ते पुनः प्रोचुः—'त्वं बालान् दृष्ट्वैव भक्षयसीति'। तदाकर्ण्य स हरस्वामी स्वयं तेषां प्रत्यायनेच्छया विप्राणामन्तिकं ययौ। विप्राश्च तं दृष्ट्वा त्रासात् मठोपरि आरुरुहुः। प्रवादमोहितो हि न कश्चित् विचारक्षमो भवति। अथ हरस्वामी अधः स्थित एव उपरि स्थितान् तान् विप्रान् समाहूय नामग्राहमेकैकमवादीत्—कोऽयं वो मोहः? नावेक्षध्वं परस्परम्? कस्य कियन्तो बालका मया कदा भक्षिताः? तदाकर्ण्य यावत्ते विप्रा अन्योऽन्यं परिमृशन्ति, तावत् सर्वेऽपि तेषां बालकाः जीवन्त एव स्थिता दृष्टाः। क्रमात् सर्वेऽपि पौरास्तथैव विमृशन्तः प्रत्यपद्यन्त अब्रुवंश्च——अहो विमूढैरस्माभिः साधुर्मिथ्या एव दूषितः। सर्वेषामेव बाला जीवन्ति, तत् कस्यानेन भक्षिताः? इत्युक्तवत्सु सर्वेषु हरस्वामी तदैव सञ्जातशुद्धिस्तस्मान्नगरात् गन्तुं प्रववृते। अविवेकिनि दुर्देशे मनस्विनो नैव रतिः। ततो वणिग्भिर्विद्वद्भिर्विप्रैश्च चरणानतः प्रशान्तितः स हरस्वामी कथञ्चित् तत्र वस्तुमङ्गीचकार। सत्यं, सच्चरितावलोकनेन जनितविद्वेषा दुर्जनाः प्रायेण सतां मिथ्यापवादं ददति।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—हरस्वामी को क्यों और क्या कलंक लगाया गया? उत्तर संस्कृत में दीजिए।

२—नगर से निर्वासित होने पर हरस्वामी ने क्या किया और उसका क्या फल हुआ ?

३—बहुलीभवन्, कर्णपरम्परामाससाद, विचारक्षमः तथा नाम-ग्राहम् के अर्थ सुस्पष्ट कीजिए।

४—अनुवाद कीजिए—

(क) सरयू के तट पर अयोध्या बसी हुई है।
(ख) दुष्टजन दूसरों की उन्नति नहीं देख सकते।
(ग) हम लोगों ने उसे झूठ ही दोष दिया।
(घ) वह अभी नगर से आया है।

५—हिन्दी में व्याख्या कीजिए—

(क) दुर्जनसंवादश्रृङ्खला आर्यपरिवादं बध्नाति हि।
(ख) प्रवादमोहितो हि न कश्चित् विचारक्षमो भवति।
(ग) सत्यं, सच्चरितावलोकेनेन जनितविद्वेषा दुर्जनाः प्रायेण सतां मिथ्यापवादं ददति।

———

तृतीयः पाठः

धर्मबुद्धिपापबुद्धिकथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने धर्मबुद्धिः पापबुद्धिश्च द्वे मित्रे प्रतिवसतः स्म। अथ कदाचित् पापबुद्धिना चिन्तितम्—'अहं तावन्मूर्खो दारिद्र्योपेतश्च। तदेनं धर्मबुद्धिमादाय देशान्तरं गत्वा अस्याश्रयेण अर्थोपार्जनं कृत्वा, एनमपि वञ्चयित्वा सुखी भवामि।' अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिर्धर्मबुद्धिं प्राह—भो मित्र! वार्द्धकभावे किं त्वमात्मविचेष्टितं स्मरसि? देशान्तरमदृष्ट्वा कां शिशुजनान् वार्तां कथयिष्यसि? उक्तञ्च—

देशान्तरेषु बहुविधभाषावेशादि येन न ज्ञातम्।
भ्रमता धरणीपृष्ठे तस्य फलं जन्मनो व्यर्थन्॥

अथ तस्य तद्वचनमाकर्ण्य प्रहृष्टमनास्तेनैव सह गुरुजनानुज्ञातः शुभेऽहनि देशान्तरं प्रस्थितः। तत्र च भ्रमता पापबुद्धिना धर्मबुद्धिप्रभावेण प्रभूततरं वित्तमासादितम्। ततश्च द्वावपि तौ प्रभूतोपार्जितद्रव्यौ प्रहृष्टौ स्वगृहं प्रति औत्सुक्येन निवृत्तौ।

अथ स्वस्थानसमीपवर्तिना पापबुद्धिना धर्मबुद्धिरभिहितः—भद्र! न सर्वमेतद्धनं गृहं प्रति नेतुं युज्यते, यतः कुटुम्बिनो बान्धवाश्च प्रार्थयिष्यन्ते। तदत्रैव वनगहने क्वापि भूमौ निक्षिप्य किञ्चिन्मात्रमादाय

गृहं प्रविशावो, भूयोऽपि प्रयोजने सञ्जाते तन्मात्रं समेत्य अस्मात्स्थानात् नेष्यावः ।' तदाकर्ण्य धर्मबुद्धिः प्राह— 'भद्र ! एवं क्रियताम्' । तथानुष्ठिते द्वावपि तौ स्वगृहं गत्वा सुखेन स्थितवन्तौ । अथान्यस्मिन्नहनि पापबुद्धिर्निशीथेऽटवीं गत्वा तत्सर्वं धनं समादाय गर्तं पूरयित्वा स्वभवनं जगाम । अथान्येद्युः धर्मबुद्धिं समेत्य प्रोवाच— 'सखे ! बहुकुटुम्बा वयं वित्ताभावात् सीदामः । तद् गत्वा तत्स्थानं किञ्चिन्मात्रं धनमानयावः ।' सोऽब्रवीत्— 'भद्र ! एवं क्रियताम् ।' अथ द्वावपि गत्वा तत् स्थानं यावत् खनतस्तावत् रिक्तं भाण्डं दृष्टवन्तौ । अत्रान्तरे पापबुद्धिः शिरस्ताडयन् प्रोवाच—'भो धर्मबुद्धे ! त्वयैव हृतमेतद्धनं नान्येन, यतो भूयोऽपि गर्तापूरणं कृतम् । तत् प्रयच्छ मे तस्यार्धम्, अथवाऽहं राजकुले निवेदयिष्यामि ।' स आह—'भो दुरात्मन् ! मैवं वद, धर्मबुद्धिः खल्वहम् । नैतच्चौरकर्म करोमि ।' एवं द्वावपि तौ विवदमानौ धर्माधिकारिणं गतौ, प्रोचतुश्च परस्परं दूषयन्तौ । अथ धर्माधिकरणाधिष्ठितपुरुषैः दिव्यार्थे यावन्नियोजितौ, तावत् पापबुद्धिः आह—'न सम्यग्दृष्टोऽयं न्यायः । उक्तञ्च—

विवादेऽन्विष्यते पत्रं तदभावेऽपि साक्षिणः ।
साक्ष्यभावात्ततो दिव्यं प्रवदन्ति मनीषिणः ।।

तदत्र विषये मम वृक्षदेवताः साक्षीभूतास्तिष्ठन्ति । ता अपि आवयोरेकतरं चौरं साधुं वा करिष्यन्ति ।'

अथ तैः सर्वैरेवाभिहितम्—'भोः ! युक्तमुक्तं भवता । अस्माकमप्यत्र विषये महत्कौतूहलं वर्तते । प्रत्यूषसमये युवाभ्यामपि अस्माभिः सह तत्र वनोद्देशे गन्तव्यमिति ।'

एतस्मिन्नन्तरे पापबुद्धिः स्वगृहं गत्वा स्वजनकमुवाच—'तात ! प्रभूतोऽयं मयार्थो धर्मबुद्धेश्चोरितः, स च तव वचनेन परिणतिं गच्छति, अन्यथास्माकं प्राणैः सह यास्यति ।' स आह—'वत्स ! द्रुतं वद येन प्रोच्य तद्द्रव्यं स्थिरतां नयामि ।' पापबुद्धिः आह—'तात ! अस्ति तत्प्रदेशे महाशमी, तस्यां महत्कोटरमस्ति, तत्र त्वं साम्प्रतमेव प्रविश । ततः प्रभाते यदाऽहं सत्यश्रावणं करोमि, तदा त्वया वाच्यं यद् धर्मबुद्धिश्चौर' इति । तथानुष्ठिते प्रत्यूषे स्नात्वा पापबुद्धिर्धर्मबुद्धिपुरःसरो धर्माधिकारणिकैः सह तां शमीमभ्येत्य तारस्वरेण प्रोवाच—

आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ।
अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये
धर्मो हि जानाति नरस्य वृत्तम् ।।

तद्भगवति वनदेवते ! आवयोर्मध्ये यश्चौरस्तं त्वं कथय ।'

अथ पापबुद्धिपिता शमीकोटरस्थः प्रोवाच—'भोः ! शृणुत शृणुत, धर्मबुद्धिना हृतमेतद्धनम् ।' तदाकर्ण्य सर्वे ते राजपुरुषा विस्मयोत्फुल्ललोचना यावद्धर्मबुद्धेः वित्तहरणोचितं निग्रहं शास्त्रदृष्ट्या अवलोकयन्ति, तावद्धर्मबुद्धिना तच्छमीकोटरं वह्निभोज्यद्रव्यैः परिवेष्ट्य

वह्निना सन्दीपितम् । अथ ज्वलति तस्मिन् शमीकोटरेऽर्धदग्धशरीरः स्फुटितेक्षणः करुणं परिदेवयन् पापबुद्धिपिता निश्चक्राम । ततश्च तैः सर्वैः पृष्टः——'भोः, किमिदम्' ? स पापबुद्धिविचेष्टितं सर्वमिदमिति निवेद्योपरतः । अथ ते राजपुरुषाः पापबुद्धिं शमीशाखायां प्रतिलम्ब्य धर्मबुद्धिं प्रशंस्येदमूचुः——'अहो ! साधु इदमुच्यते 'उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथापायञ्च चिन्तयेत्' ।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१——पापबुद्धि को अपनी चोरी का क्या फल मिला ? उत्तर संस्कृत में दीजिए ।

२——समास का विग्रह कीजिए तथा नाम दीजिए——

देशान्तरम्, धर्मबुद्धिः, चौरकर्म ।

३——अनुवाद कीजिए——

(क) आज तुम्हें लेकर स्कूल चलेंगे ।
(ख) मिट्टी खोदने का काम करोगे ?
(ग) आधी रात को कौन आया है ?
(घ) धर्म में मन लगाओ, पाप में नहीं ।

४——सन्धि-विच्छेद कीजिए——

अर्थोपार्जनम्, प्रोचतुः, साक्ष्यभावात् ।

चतुर्थः पाठः

सार्वभौमधर्माः

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ १ ॥

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत् ।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥ २ ॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत कामतः ।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा संनिवर्तयेत् ॥ ३ ॥

आर्द्रपादस्तु भुञ्जीत नार्द्रपादस्तु संविशेत् ।
आर्द्रपादस्तु भुञ्जानो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि ।
न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये ॥ ५ ॥

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते ।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम् ॥ ६ ॥

आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ७ ॥

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ ८ ॥

नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत् ।
न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे ॥९॥
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः ।
न नदीतीरमासाद्य न च पर्वतमस्तके ॥१०॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥११॥
आसनाशनशय्याभिरद्भिर्मूलफलेन वा ।
नास्य कश्चिद्वसेद् गेहे शक्तितोऽनर्चितोऽतिथिः ॥१२॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥१३॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥१४॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥१५॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥१६॥
आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥१७॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।१८।।

महर्षिपितृदेवानां गत्वानृण्यं यथाविधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थ्यमाश्रितः ।।१९।।

एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मनः ।
एकाकी चिन्तयानो हि परं श्रेयोऽधिगच्छति ।।२०।।

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयसकरं परम् ।
तपसा किल्विषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते ।।२१।।

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ।।२२।।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति ।।२३।।

सर्वमात्मनि संपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः ।।२४।।

एवं यः सर्वभूतेषु पश्यत्यात्मानमात्मना ।
स सर्वसमतामेत्य ब्रह्माभ्येति परं पदम् ।।२५।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—पाँच प्रमुख शिक्षाओं को संस्कृत में लिखिए।

२—समासेन, आर्द्रपादः ससत्त्व तथा दम शब्दों के अर्थ बताइए।

३—सन्धि-विच्छेद कीजिए—नास्य, ब्रह्माभ्येति, श्रुत्युक्तः।

४—तप और विद्या के क्या फल बताये गये हैं? तीन ऋण कौन-कौन से हैं?

पञ्चमः पाठः

वाल्मीकिवृत्तान्तः

पुरा वाल्मीकिर्नाम महामुनिर्बभूव । तस्यैव प्राचेतस इत्यपि नाम आसीत् । जात्या ब्राह्मणोऽपि स्वजीवनस्यारम्भिककाले स महान् दुर्वृत्त आसीत् । पथिकजनान् हत्वा तेषां धनस्य लुण्ठनमेव तस्य प्रधानं जीविकासाधनमासीत् । अपहृतेन परधनेनैव स स्वकुटुम्बिनः पुपोष । एकदा कोऽपि महर्षिस्तत्समीपस्थेन पथा गच्छति स्म । तं दृष्ट्वा दूरादेवाकार्य्यं बभाषे---यत्किञ्चित्तव पार्श्वे विद्यते, तत्सर्वं समर्पय, नोचेत् प्राणसंशयस्ते भवतीति । ऋषिरुवाच---न किञ्चिदपि मत्पार्श्वेऽस्ति । त्वां तावदिदं पृच्छामि, किं त्वद्द्वारा लुण्ठितेन धनेन पोष्यमाणास्ते कुटुम्बिनः त्वत्कृतपापभागिनो भविष्यन्तीति ? स उवाच---तानपृष्ट्वा नैव किञ्चिदपि वक्तुं शक्नोमि । तर्हि तान् प्रष्टुमेतद् गृहं गच्छामि, यावच्चाहं न निवर्ते, तावद्भवानत्रैव प्रतीक्षतामिति । एवमस्त्वित्युक्तवति महर्षे स गृहं जगाम स्वकुटुम्बिनां नकारात्मकेनोत्तरेण च चकितो निर्विण्णश्च प्रत्याजगाम । निर्विण्णं तमाश्वास्य कृपा-परवशो महर्षिस्तद्वृत्त्यनुकूलं 'मरा' इति जप्तुमुपदिश्यान्तर्दधे ।

अथ स निश्चलं समाधिमास्थाय बहून् संवत्सरगणान् तीव्रतरं तपश्चचार। ततस्तस्य शरीरस्योपरि वल्मीकाः प्रादुरभवन्। प्रतिदिनं घनतरं प्ररूढैर्वल्मीकैस्तिरोहितं तस्य शरीरमदृश्यं बभूव। अथ बहुतिथे काले गते कदाचिद् भगवान् प्रचेता वल्मीकमृत्तिकाः निरन्तरजलधारया परिस्रावयामास। ततो मुनिभिः सर्वैरभ्यर्थितः स समाधेः विरम्य चक्षुषी उन्मील्य उदतिष्ठत्। तत एव स वल्मीकेभ्य उद्गतत्वात् 'वाल्मीकिः' प्रचेतसोत्थापितत्वाच्च 'प्राचेतसः' इति, इति संज्ञाद्वयं लेभे, ब्रह्मर्षित्वं चावाप।

अथ कदाचित् ब्रह्मपुत्रो देवर्षिः नारदस्तस्य ब्रह्मर्षेराश्रममाजगाम। तस्य सकाशात् वाल्मीकिर्भगवतो रामभद्रस्य चरितं सङ्क्षेपतः शुश्राव। ततः प्रभृत्येव स लोकहिताय सम्पूर्णं रामचरितं काव्ये निबद्धुमाचकाङ्क्ष। अथ स ब्रह्मर्षिः एकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः। तत्र युग्मचारिणोः क्रौञ्चयोर्नरपक्षिणं व्याधेन विध्यमानं ददर्श। प्राणार्थं विचेष्टमानं तं दर्शं दर्शं, तस्य स्त्रियाः करुणारावं च श्रावं श्रावं तस्य मनसि महान् शोकः समजायत। तेन आकस्मिकप्रत्यवभासां देवीं वाचमानुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्—

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

आम्नायादन्योऽयं नूतनच्छन्दसामवतारः आसीत्। तेनैव पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दब्रह्म-प्रकाशं ब्रह्मर्षिमुपगम्य भगवान् भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत्—ऋषे! प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि, तद् ब्रूहि रामचरितम्। अव्याहतज्योतिरार्षं प्रातिभं चक्षुः। आद्यः कविरसि, इत्युक्त्वान्तर्हितः। अथ स भगवान् प्राचेतसः मनुष्यलोके प्रथमं काव्यमितिहासरूपं रामायणं प्रणिनाय।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—रामायण के रचयिता के 'वाल्मीकि' और 'प्राचेतस' नाम कैसे पड़े? वे पहले क्या करते थे?

२—दुर्वृत्त, माध्यन्दिनसवन, प्रातिभ तथा आर्ष शब्दों के अर्थ बताइए।

३—मनुष्य-लोक का प्रथम काव्य कौन-सा है? उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? उत्तर संस्कृत में दीजिए।

४—अनुवाद कीजिए—

(क) मुझे यह जानकर महान् दुःख हुआ।
(ख) जीविका का कोई साधन निकालो।
(ग) ऋषि का हृदय करुणा से भर गया।
(घ) हमारे कुटुम्बी बड़े सुजन हैं।

———

षष्ठः पाठः

रावणाय मारीचस्योपदेशः

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
प्रत्युवाच महातेजा मारीचो राक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ २ ॥

न नूनं बुध्यसे रामं महावीरं गुणोन्नतम् ।
नीतिज्ञं युद्धनिपुणं महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ३ ॥

अपि स्वस्ति भवेत् तात सर्वेषामपि रक्षसाम् ।
अपि रामो न संक्रुद्धः कुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥ ४ ॥

अपि ते जीवितान्ताय नोत्पन्ना जनकात्मजा ।
अपि सीता निमित्तं च न भवेद् व्यसनं महत् ॥ ५ ॥

अपि त्वां स्वामिनं प्राप्य कामवृत्तं निरङ्कुशम् ।
न विनश्येत् पुरी लंका त्वया सह सराक्षसा ॥ ६ ॥

त्वद्विधः कालवृत्तो हि दुश्शीलः पापमन्त्रितः ।
आत्मानं स्वजनं राष्ट्रं राजा हन्ति च दुर्मतिः ॥ ७ ॥

न च पित्रा परित्यक्तो नामर्यादः कथञ्चन ।
न लुब्धो न च दुश्शीलो न च क्षत्रियलाञ्छनः ॥ ८ ॥

न च धर्मगुणैर्हीनः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
न च तीक्ष्णो हि भूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥ ९ ॥

वञ्चितं पितरं दृष्ट्वा कैकेय्या सत्यवादिनम् ।
करिष्यामीति धर्मात्मा ततः प्रव्रजितो वनम् ॥१०॥

कैकेय्याः प्रियकामार्थं पितुर्दशरथस्य च ।
हित्वा राज्यं च भोगांश्च प्रविष्टो दण्डकाननम् ॥११॥

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥१२॥

कथं नु तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन वासव ।
काङ्क्षसे प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥१३॥

शरज्वालमजेयं च धनुःखड्गेन्धनं रणे ।
रामाग्निं सहसा दीप्तं न प्रवेष्टुं क्षमोऽसि त्वम् ॥१४॥

अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा ।
न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापैः सुरक्षिताम् ॥१५॥

तस्य वै नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी ।
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ॥१६॥

सा न घर्षयितुं शक्या मैथिली वीरभामिनी ।
दीप्तमेव हुताशस्य शिखा सीता सुमध्यमा ॥१७॥

आत्मनश्च बलं ज्ञात्वा राघवस्य च तत्त्वतः ।
हितं हि तव निश्चित्य क्षमां त्वं कर्तुमर्हसि ॥१८॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—रावण को दिये गये मारीच के उपदेश का सार संस्कृत के पाँच वाक्यों में लिखिए ।

२—सन्धि-विच्छेद कीजिए—प्रत्युवाच, तच्छ्रुत्वा, जनकात्मजा ।

३—संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

(क) राम क्रुद्ध होंगे, तो समस्त राक्षसों को विनष्ट कर देंगे ।

(ख) पति के अनुकूल चलने वाली पत्नी उसे प्राण से भी अधिक प्रिय होती है ।

(ग) स्वयं निश्चय करो, तुम्हारा हित क्या है ?

G S Botony

सप्तमः पाठः

कपोतोपाख्यानम्

कस्मिश्चित् महारण्ये कश्चन व्याधः आसीत्। सः बहूनां प्राणिनां हिंसया प्रतिदिनं वृत्तिं कल्पयन् आस्त। अत्यन्तं रौद्रं कर्म कुर्वाणः सः बान्धवैः सुहृद्भिश्च सर्वैः परित्यक्तः बभूव। अथ कदाचित् आहारार्थम् वने परिभ्रमतस्तस्य काचित् कपोती हस्तगता जाता। तां पञ्जरे निक्षिप्यादाय गृहं प्रति निववृत्ते।

(तस्मिन् पथि वर्तमाने अकस्मात् महती वातवृष्टिः सञ्जाता। सर्वाः दिशः मेदुरैः मेघैः अन्धकारिताः आसन्। सः व्याधः शीतबाधया कम्पमानगात्रः परित्राणार्थम् कस्यचित् वनस्पतेः मूलमाससाद। मुहूर्तं स्थित्वा उन्मुखः भूत्वा प्रोवाच— भो! भोः! योऽस्मिन् वृक्षे तिष्ठति, स मां त्रायताम्, शीतेन क्षुधा च बाध्यमानः शरणागतोऽस्मि' इति।)

तस्य वृक्षस्य स्कन्धे कपोतः सुचिरम् उषितः आसीत्। सः भार्यायाः विरहेण दुःखित एवं विललाप—'अहो वातवृष्टिः महती वर्तते। न अद्यापि आगच्छति मे प्रिया। तया विरहितम् इदं मम गृहं शून्यं प्रतिभाति।

न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं हि गृहिणीहीनम् अरण्यसदृशं मतम्'॥ इति।

करुणम् एतद् वचनं पञ्जरस्था कपोती श्रुत्वा वाक्यमेतत् प्रोवाच—

"श्रृणु चावहितः कान्त यत् ते वक्ष्याम्यहं हितम् ।
प्राणैरपि त्वया नित्यं संरक्ष्यश्शरणागतः ।।
एष शाकुनिको वृक्षं तवावासं समाश्रितः ।
शीतार्तश्च क्षुधार्तश्च पूजामस्मै समाचर ।।
किञ्चास्मिन् मा कुरु द्वेषम् बद्धाहममुनेति वै ।
स्वकृतैरेव बद्धाहम् अशुभैः पूर्वकर्मभिः ।।
दारिद्र्यरोगदुःखानि बन्धनव्यसनानि च ।
आत्मापराधवृक्षस्य फलान्याहुर्मनीषिणः ।।
तस्मात् त्वं द्वेषमुत्सृज्य मद्बन्धनसमुद्भवम् ।
धर्मे मनः समाधाय पूजयैनं यथाविधि" ।। इति ।।

एवं कपोत्याः धर्म्यं वचनं श्रुत्वा कपोतः वृक्षात् अवरुह्य तं व्याधं प्राह—

'लुब्धक ! स्वागतं तेऽस्तु ब्रूहि किं करवाणि ते ।
सन्तापो नैव कर्तव्यः स्वगृहे वर्तते भवान् ।।' इति ।।

एतत् वचनं श्रुत्वा स लुब्धकः प्राह—'हे कपोत ! प्रथमं मे शीतबाधां परिहर' इति ।

अथ सः कपोतः कुतोऽपि शुष्कानि पर्णानि आनीय पावकं सम्पाद्य तत्र निक्षिप्य सन्दीपयामास । अथ चैनमवाच—'भद्र किरात ! अत्र गात्राणि संतापयस्व ।

परन्तु तव क्षुधं परिहर्तुं शक्तिः नास्ति। अथापि स्व-शरीरं दास्यामि। तेन आहारं कुरु। किञ्चिदपि क्षुधं परिहर', इत्युक्त्वा स्वयं तस्मिन् अग्नौ पपात।

तत् दृष्ट्वा लुब्धकः तस्मिन् कपोते परां कृपाम् चकार। सुचिरं कालं पापकर्मसु निरतम् पापबुद्धिम् आत्मानं बहुधा निनिन्द। 'नृशंसस्य मम स्वमांसानि प्रयच्छता अनेन कपोतेन उपदेशः प्रदर्शितः' इत्युक्त्वा पञ्जरं पाशं लगुडं च दूरतः प्रक्षिप्य, दीनां कपोतीञ्च विसृज्य प्राणिहिंसां परित्यक्तुं तपश्च चरितुं निश्चिकाय। परमं निर्वेदम् आययौ। तेन मुक्ता कपोती तस्मिन् पश्यत्येव तमेवाग्निं प्रविवेश, सद्य एव दिव्याम्बरधरा दिव्याभरण-भूषिता दिव्यतनुना भर्त्रा सह सङ्गता विमानामारूढा दिवं जगाम। एतत् पश्यन् किरातोऽपि विस्मयाविष्टः स्वयमपि दावानलं प्रविश्य निष्कल्मषो भूत्वा स्वर्गलोकं प्रययौ।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—पहेलियों के लिए इस पाठ में जितने शब्द आये हों, उन्हें कण्ठस्थ कीजिए।

२—हस्तगता, क्षुधार्तः, पापबुद्धिः तथा प्राणिहिंसा पदों का विग्रह कीजिए।

३—कपोती ने अपने पति के सामने जो आदर्श रक्खा, उसको संस्कृत के पाँच वाक्यों में लिखिए।

४—कपोत ने व्याध का क्या आतिथ्य किया और उस पर इसका क्या प्रभाव पड़ा?

अष्टमः पाठः

कौशिकवृत्तान्तः

अस्ति कान्यकुब्जं नाम नगरम्। तत्र क्षत्रियवंशे प्रसूतः गाधेः तनयः विश्वरथः नाम राजा बभूव, यः अनन्तरं विश्वामित्र इति गुणकृतेन नाम्ना प्रसिद्धिं प्राप। स कदाचित् सान्तःपुरः ससैन्यः मृगयामटितुं वनाय वव्राज। तस्य वने एव सुदीर्घं कालं वस्तुम् अभिरुचिः आसीत्। स एकस्मिन् दिने सकलानि आयुधानि आदाय मृगयायै गहनं वनं प्रविवेश। तत्र सिंहान् व्याघ्रान् भल्लूकान् हरिणान् अन्यांश्च नानाविधान् वन्यमृगान् जघान।

दीर्घकालं मृगयाटनेन अत्यन्तं परिश्रान्तो बभूव। चण्डांशुः नभोमध्यगतः प्रचकाशे। विश्वरथः ललाटन्तपेन सूर्यातपेन तप्तोऽभूत्। शिविरम् अतिदूरे स्थितम्। क्षुधया पिपासया च भृशम् बाधितो बभूव। निर्मानुषेऽरण्ये इतस्ततः परिबभ्राम। अन्ततः तस्य नातिदूरे वर्तमानं भगवतः वसिष्ठस्य महर्षेः आश्रमस्थानं दृष्टिगोचरम् अभूत्। तत्र गत्वा वसिष्ठं प्रणनाम। भगवान् वसिष्ठः तं क्षुत्पिपासाभ्यां परिश्रान्तमवगत्य स्वागतादिभिरुपचारैः यथार्हम् अर्चयामास।

अत्रान्तरे तस्य सैनिकाः परिजनाश्च तम् अन्विष्यन्तः तदेव आश्रमस्थानम् आजग्मुः। भगवान् वसिष्ठः ससैनिकस्य सपरिजनस्य तस्य राज्ञः आतिथ्यं कर्तुम् इयेष। तस्य वंशे नन्दिनी नाम दिव्या धेनुरासीत्। सा च आश्चर्यशक्तियुक्ता आसीत्। तां आतिथ्यस्य संविधानानि विधातुम् वसिष्ठः नियुयोज। तस्याः प्रभावात् सर्वेषां सैनिकानां राज्ञश्च समग्रम् आतिथ्यं कृतम्।

एवंविधं नन्दिन्याः प्रभावं दृष्ट्वा विश्वरथः वसिष्ठम् उपगम्य 'नन्दिनीं मह्यं देहि' इति ययाचे। वसिष्ठस्तु तां दातुं नाङ्गीचकार। विश्वरथः पुनः पुनः निर्बन्धमकरोत्। तेन उभयोः महती स्पर्धा जाता।

विश्वरथः बलात्कारेण नन्दिनीम् अपहर्तुम् सैनिकान् आदिदेश। तैः बलादाकृष्यमाणा सा नन्दिनी क्रोधाविष्टा शरीरं विधुन्वाना हुम्भारवं चकार। तस्याः शरीरात् पुलिन्दा शका यवना हूणा म्लेच्छा इत्यादयः सैनिकाः शस्त्रपाणयः निर्जग्मुः। ते च नानाविधैः प्रहरणैः प्रहृत्य विश्वरथस्य योधान् विद्रावयामासुः। ते योधाः कान्दिशीका भूत्वा दिशि दिशि पलायाञ्चक्रिरे। विश्वरथः पुनरपि अत्यन्तं कुपितः तपः प्रभावसंपादितानि बहूनि अस्त्राणि वसिष्ठस्योपरि प्रयुयोज। वसिष्ठस्तु स्वस्य तपस्सिद्धौ साधनं दण्डमेकम् आत्मनः पुरतः निचखान। विश्वरथेन प्रयुक्तानि सर्वाण्यस्त्राणि ते दण्डेन

भस्मसात् अक्रियन्त । अनन्तरम् असौ विश्वरथः स्वक्षात्रबलमेवं भर्त्सितवान्——

'धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे' ।।इति।।

अथ च तपोबलेन ब्राह्मण्यं संपादनीयमिति निश्चिकाय । राज्यभारं पुत्रेषु निक्षिप्य वनं वव्राज । तत्र तीव्रतरं तपः चचार । तस्माद् भीता देवा विघ्नमुत्पादयितुमारेभिरे । भूलोके मनुष्याः तपः चरन्ति चेत्, स्वर्गलोके वसतां देवानां भयं जायते । किमिति, 'एते तपसः महिम्ना स्वर्गलोकं गच्छेयुश्चेत् तर्हि अस्माकम् आराधनादीनि न कुर्युः' इति । तस्मात् मनुष्याणां तपश्चरणं देवैः विहन्यते ।

तत्र प्रथमं त्रिशङ्कुं स्वर्गम् आरोपयितुं बहुना कालेन संपादितं तपोबलं नष्टमभूत् । अथ च शुनश्शेफाख्यस्य मुनिकुमारस्य प्राणसंरक्षणाय तपः विनियुक्तम् आसीत् । अनन्तरं मेनकया सह संगतेन महत् तपः नष्टमभवत् । ततश्च रम्भायाः शापदानेन महान् तपोव्ययः समभूत् । एवं पदे पदे प्रतिहतेऽपि तपसि विश्वरथोऽयं न व्यरंसीत् । अन्ततः ब्रह्मर्षित्वं जितेन्द्रियत्वं चावाप । तदनन्तरमेवास्य विश्वामित्रः इति नाम पप्रथे । ईदृशानामेव महापुरुषाणां विषये उक्तमिदम्——

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहताः विरमन्ति मध्याः ।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति ।।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—विश्वामित्र का पहले का नाम क्या था ? उनके इस नाम का क्या अर्थ है ? यह कब और क्यों पड़ा ?

२—नन्दिनी को न पाने पर विश्वामित्र ने क्या किया और वसिष्ठ जी ने उसका क्या प्रतीकार किया ? प्रश्न का उत्तर संस्कृत में दीजिए।

३—ललाटन्तप, चण्डांशु तथा ब्रह्मण्य शब्दों के खण्डशः अर्थ कीजिए।

४—संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

(क) बहुत देर तक दौड़ने से वह थक गया।

(ख) इस वन में तो मनुष्य का नाम नहीं है।

(ग) सत्कार की सब सामग्री इकट्ठी कर लो।

(घ) विघ्नों से कभी भी हताश न होना चाहिए।

नवमः पाठः

महाभारतामृतम्

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।। १ ।।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ।। २ ।।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ।। ३ ।।

शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति ।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ।। ४ ।।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।। ५ ।।

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।। ६ ।।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।। ७ ।।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः,
सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः ।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः,
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।। ८ ।।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति,
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च,
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।। ९ ।।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा,
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा,
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ।। १० ।।

न क्रोधिनोऽर्थो न नृशंसस्य मित्रं,
क्रूरस्य न स्त्री सुखिनो न विद्या ।
न कामिनो ह्रीरलसस्य न श्रीः,
सर्वं तु न स्यादनवस्थितस्य ।। ११ ।।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य,
मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी ।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो,
रूक्षां वाचं रुशतीं वर्जयन्ति ।। १२ ।।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।

मायाचारो मायया वर्तितव्यः,
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥१३॥

अकर्मशीलं च महाशनं च,
लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेष-
मेताञ्जनान्न प्रतिवासयेत ॥१४॥

य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नरः,
स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत ।
अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः,
स तेजसा सूर्य इवावभासते ॥१५॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—मानवलोक के छः सुख कौन हैं ? सुख और ऐश्वर्य चाहने वाले को कौन से छः दोष दूर करने चाहिए ? उत्तर संस्कृत में दीजिए ।

२—श्लोक ५,६,७ तथा १५ को कण्ठस्थ कीजिए तथा इनमें प्रस्तुत किये गये आदर्शों पर ध्यान दीजिए ।

३—हन्त्यनर्थम्, तस्मिंस्तथा और जनान्न में सन्धि-विच्छेद कीजिए ।

४—अनुवाद कीजिए—

(क) बहुत बोलना ठीक नहीं; कम बोले, सत्य बोले ।
(ख) देश और काल को जानने वाला सम्मान पाता है ।
(ग) सुख चाहने वाले के पास से विद्या दूर चली जाती है ।

दशमः पाठः

चित्रकूटे रामभरतसमागमः

रामः— (सीतां दृष्ट्वा)—प्रिये ! पश्येमां मन्दाकिनीं नदीम् । अस्याः पुलिनेषु हंसाः वरटाभिः सह क्रीडन्ति । अकर्दमानि तीर्थानि रमणीयानि दृश्यन्ते ।

सीता— आम् नाथ ! मनोहरोऽयं वनोद्देशः । मम अत्यर्थं प्रीतिं संजनयति । वनवासः मे भृशं रोचते ।

(सैन्यानां कलकलः श्रूयते)

रामः— वत्स ! लक्ष्मण ! जानीहि किमेतदिति ।

लक्ष्मणः— (पार्श्वस्थितं वृक्षमारुह्य) आर्य ! आर्य ! अग्निं संशमय । सीतां गुहां विशतु । धनुः सज्जं कुरु ।

रामः— अपि ज्ञायते कस्येयं चमूरिति ?

लक्ष्मणः— भरतस्यैव ।

रामः— तर्हि धनुषा किं कार्यम् ?

लक्ष्मणः— स दुरात्मा भरतः अस्मान् हन्तुम् महतीं सेनामादाय अभिषेणयति ।

रामः— लक्ष्मण ! अलमनया चिन्तया । वृक्षादवरुह्य आयाहि ।

(लक्ष्मणः तथा करोति)

रामः—— (सहर्षम्) लक्ष्मण ! अपि सत्यम् भरतः आगच्छतीति ।

लक्ष्मणः——किं चिरायसे, धनुः गृह्यतां शीघ्रम् । अथवा योद्धुं मामादिश । अहमेनम् अपकारिणम् हनिष्यामि ।

रामः—— मैवं वादीः । भरतः आगच्छतीति श्रुत्वा मम महान् प्रमोदः ।

लक्ष्मणः—— विरुद्धमिदमुच्यते । भरत एव खलु मूलम् अस्माकम् ईदृशस्य वनवासक्लेशस्य ।

रामः—— नहि नहि, कैकेय्या स्वच्छन्दतः कृतमिदम् । सत्य भरतः नाभिनन्दति ।

लक्ष्मणः—— यथा तथा वा भवतु । नाहं भरतस्य वधे दोषं पश्यामि ।

रामः—— राज्यार्थः खलु तवायं संरम्भः । भरतः आगच्छतु । लक्ष्मणाय राज्यं देहीति तं वक्ष्यामि । सः अवश्यं दास्यति । त्वम् अयोध्यायां राज्ये स्थितः सुखं वस ।

(लक्ष्मणः व्रीडितः तूष्णीम् तिष्ठति)

रामः—— लक्ष्मण ! भरतः मां प्रव्राजितं श्रुत्वा स्नेहाक्रुष्टहृदयः मां द्रष्टुमायातीति मन्ये ।

(लक्ष्मणः अनाकर्णितकमनिनीय तूष्णीमास्ते)

भरतः— (पादाभ्यां संचरमाणः दूरतः दृष्ट्वा) आः ! मम आर्यः रामः मुनिवेषधारी पर्णशालाभ्यन्तरे उपविष्टः दृश्यते ।

लक्ष्मणः— अयं भरत आगतः (इत्युक्त्वा रामस्य पृष्ठतः निलीनः तिष्ठति ।)

भरतः— आर्य ! आर्य ! (इति उक्त्वा वाष्पनिरुद्धकण्ठः पादयोः पतति ।)

रामः— वत्स ! एहि एहि (इत्युक्त्वा हस्तौ प्रसार्य तमुत्थाय गाढमालिङ्गति ।)

(भरतः दुःखेन किमपि वक्तुमशक्नुवन् वाष्पम् विसृजति ।)

रामः— भरत ! पितरमुत्सृज्य किमर्थम् वनमागतोऽसि?

भरतः— आर्य ! तातो नः पुत्रशोकभारं सोढुमशक्नुवन् राम रामेति विलपन् प्राणान् जहौ ।

रामः— हा तात ! पुत्रवत्सल ! स्वर्गं गतोऽसि । (इति उच्चैः विलपन् उत्थाय नदीम् गत्वा स्नात्वा पित्रे निर्वापम् इङ्गुदीफलकृतं पिण्डञ्च दत्त्वा कुटीरमाससाद ।) (सशोकम्)

भरतः— आर्य ! सर्वे पौरजानपदाः त्वामेव राजानम् वाञ्छन्ति । त्वदन्येन दुर्भरमिदं राज्यम् । आत्मानमभिषेचय । सर्वानस्मान् सकामान् कुरु ।

रामः— वत्स ! महाराजः मां वनं गच्छेत्यादिदेश। दण्डकारण्ये वस्तव्यमिति च तस्याज्ञा। तत् कथमन्यथा करिष्यामि।

भरतः— नायम् अस्मत्तातस्य कामचारः किन्तु मम जनन्या नियुक्तः कृतवान्। एवं पापकारिणी कैकेयी घोरे नरके पतिष्यति।

रामः— भरत ! न मध्यमाम्बा गर्हणीया। पितुः पुत्रेषु सर्वतोमुखी प्रभुता। स मां राज्ये वा वने वा वासयितुमीश्वरः। मया च तदाज्ञापालनं प्रतिज्ञातम्। सर्वथा तत् नान्यथा करिष्यामि।

जाबालिः—राम ! ममाप्यत्र वक्तव्यमस्ति। कार्याकार्यनिर्णये प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्। परोक्षं सर्वमप्रमाणम्। एक एव जन्तुः जायते, एक एव नश्यति। कः कस्य बन्धुः ? अकार्यमपि कृत्वा सुखं जीवेत्। तत् अयत्नलब्धम् ऐश्वर्यम् मा त्याक्षीः।

रामः— भरत ! अयं जाबालिः ब्राह्मणः नास्तिकः धर्ममर्यादाम् उल्लङ्घ्य प्रजल्पति। अद्यैव इमं राज्यात् निर्वासय त्वम्।

जाबालिः—राम ! नाहं नास्तिकः। कालानुगुणम् नास्तिकोऽस्मि, त्वां प्रसादयितुमेवमुक्तम्।

वसिष्ठः— रामभद्र ! कोपस्य वशं मा गमः । जाबालिः धर्माधर्मौ सम्यक् जानाति । त्वाम् निवर्तयितुम् एवमुक्तवान् ।

रामः— यथा तथा वा भवतु । परिहासेऽप्यनृतोक्तिः नोचिता ।

वसिष्ठः— रामभद्र ! त्रयः गुरवः पूज्याः । माता पिता आचार्यश्चेति । ज्ञानजन्मनि आचार्यः गुरुः । तदेव श्रेष्ठं जन्म । तवाहं ज्ञानजन्मनि गुरुः । अनुशास्मि । निवर्तस्व वनात् ।

रामः— वने वस्तुं प्रतिज्ञातं मया । न मे वचनं मिथ्या भविष्यति ।

भरतः— (सशोकम्) भोः सुमन्त्र ! स्थण्डिले कुशान् आस्तृणीहि । अस्याः पर्णशालायाः पुरतः प्रायोपवेशनं करिष्यामि, यावदार्यो मे न प्रसीदति ।

(सुमन्त्रः रामस्य मुखं वीक्ष्य तूष्णीम् तिष्ठति ।)

भरतः— (दुर्मनाः भूत्वा) भूमावेव शयिष्ये ।

रामः— भरत ! कथं मम वचनमतिक्रमसे ? धर्मस्य गतिः ईदृशी । विरमास्मात् संरम्भात् ।

भरतः— (उत्थाय अभितो विलोक्य साञ्जलिबन्धम्) भो ! भोः ! पौरजानपदाः ! रामो राजधानीं प्रति-

निवर्तताम् । अहं वने वत्स्यामि । भवन्त एनमनुशासतु ।

रामः— वत्स ! क्रीतविक्रीतयोरन्यथाकरणं न नः समुचितम् ।

ऋषयः— भो राजकुमारौ ! युवयोः संभाषणम् अत्यर्थम् स्पृहणीयम् । अथापि रामस्य वाक्यमेव सिद्धान्तयितुमर्हम् ।

रामः— (सहर्षम्) साधुः ! साधु !

भरतः— पुनरहं याचे । मम जनन्यपि याचते । कथमपि राज्यं पालयितुं न शक्नोमि । दुष्करं जनतारञ्जनम् । त्वामेवप्रतीक्षन्ते पौरजनाः । प्रसीद ! प्रसीद ! (इति पादयोः पतति)

वसिष्ठः— कुमारौ ! भवतोरहं सन्धिम् विधास्यामि । वत्स राम ! प्रयच्छ त्वमस्मै स्वकीये पादुके शुभे । एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमौ विधास्यतः ।

रामः— यदाज्ञापयति गुरुः । (इति पादुके अधिरुह्य भरताय ददौ ।)

(भरतः सहर्षं प्रणम्य पादुके गृहीत्वा शिरसि कृत्वा ससैन्यः प्रतिनिववर्ते)

भरताय परं नमोऽस्तु तस्मै
प्रथमोदाहरणाय भक्तिभाजाम् ।
यदुपज्ञमशेषतः पृथिव्याम्
प्रथितो राघवपादुकाप्रभावः ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—समास-विग्रह कीजिए तथा नाम दीजिए—
दुरात्मा, पौरजानपदाः अनृतोक्तिः ।

२—भरत को दोष देने पर लक्ष्मण से राम ने क्या कहा ?

३—भरत के व्यवहार से उनका चरित्र कैसा ज्ञात होता है ? उत्तर संस्कृत में दीजिए ।

४—सन्धि-विच्छेद कीजिए—
राज्यार्थः, जनन्यपि, नमोऽस्तु, प्रथमोदाहरणाय ।

———

एकादशः पाठः

१—पण्डितलक्षणम्

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्दधानो ह्येतत् पण्डितलक्षणम् ॥ १ ॥

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता ।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ २ ॥

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ ३ ॥

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥ ४ ॥

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते ।
न किञ्चिदवमन्यते नराः पण्डितबुद्धयः ॥ ५ ॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति
विज्ञाय चार्थं भजते, न कामात् ।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे
तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ ६ ॥

२—विष्णुभक्तलक्षणम्

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १ ॥

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ २ ॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ ३ ॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ ४ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ ५ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ ६ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ ७ ॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥ ८ ॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—पंडित के पाँच प्रधान लक्षण संस्कृत में लिखिए ।

२—निम्नलिखित का तात्पर्य स्पष्ट समझाइए—क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति, यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।

३—भगवद्भक्त का जो आदर्श ऊपर उपस्थित किया गया है, उसे संक्षेप में लिखिए ।

४—अनुवाद कीजिए :—

(क) मान और अपमान दोनों में समभाव होना चाहिए ।

(ख) जिसे किसी से कुछ भी न चाहिए, वही सच्चा भक्त है ।

(ग) साधु का कोई घर नहीं होता, उसका किसी से लगाव नहीं होता ।

(घ) शक्ति के अनुसार ही कार्य करने वाला पुरुष सुखी रहता है ।

द्वादशः पाठः

परीक्षित्कथा

आसीत् पुरा मध्यमस्य पाण्डवस्य अर्जुनस्य पौत्रः अभिमन्योः पुत्रः परीक्षत् नाम राजा। स कदाचित् मृगयामटन् वनेषु सुचिरं परिबभ्राम। समीरणाधिकेन वेगेन पलायमानम् एकं हरिणम् अनुबध्नन् 'अयं गृहीतः, अयं गृहीतः' इत्यतिकुतूहलाकृष्टचेताः तेन सुदूरम् आकृष्टः निर्जने विपिने नितरां परिश्रान्तो बभूव। ललाटन्तपेनातपेन प्रतप्तगात्रः तीव्रतरया पिपासया परीतः पानीयार्थी इतस्ततः परिभ्रमन् शमीकाख्यस्य महर्षेः पर्णशालामवाप। तस्यां पर्णशालायाम् अन्तरुपविष्टं मौनव्रते स्थितं शमीकं महर्षिं दृष्ट्वैवमुवाच—

'भो भो ब्रह्मन्नहं राजा परीक्षिदभिमन्युजः।
मया विद्धो मृगो नष्टः कच्चित्तं दृष्टवानसि ?' इति।

मौनव्रते स्थितः स मुनिः न किञ्चित् प्रत्युवाच। तेन तस्य राज्ञः कोपः समभूत्। तत्र दृष्टं मृतं सर्पं धनुष्कोट्या समादाय तस्य मुनेः कण्ठे मालामिव समासज्य स्वां राजधानीं प्रययौ। अतीव क्षमावान् स महामुनिः

एवम् अपकारिणोऽपि तस्य प्रजापालस्योपरि कोपं नाकरोति ।

तस्य शृङ्गी नाम पुत्रः आसीत् । बाल्ये वयसि वर्तमानः सः वयस्यैः सह विहरन् आसीत् । तदानीम् इमं वृत्तान्तं जनेभ्यःशुश्राव । ते एवं प्रोचुः—'भोःशृङ्गिन् ! मौनव्रते वर्तमानस्य तव पितुः कण्ठे कश्चन क्षत्रियः समागत्य मृतं सर्पं समासज्य गतः' इति । तत् श्रुत्वा शृङ्गी सद्य एव सरभसम् आगत्य तथाविधं पितरम् अद्राक्षीत् । निरपराधे महातपस्विनि पितरि कृतां तां निष्कृतिम् अभिवीक्ष्य नितरां चुकोप । अतिप्रवृद्धेन मन्युना प्रज्वलन्निव सद्य एव कमण्डलुस्थेन उदकेनोपस्पृश्य एवं शशाप—

अहो धर्मविपर्यासः प्रवृत्तो जगतीतले ।
कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ॥

ऐश्वर्यमदमत्तस्य क्षत्रियस्य व्यतिक्रमम् ।
अद्याहं शास्मि विप्रेन्द्राः पश्यन्तु तपसो बलम् ॥

यो मे पितुः स्कन्धदेशे प्राक्षिपन्मृतपन्नगम् ।
तमितस्सप्तमे घस्रे तक्षको दङ्क्ष्यति ध्रुवम् ॥

इत्येवम् अतिदारुणं शापं दत्त्वा स मुनिकुमारः पितुरन्तिकम् उपगम्य अतिमात्रदुःखतः भृशमुच्चैः रुरोद ।

अथ च मौनात् निवृत्तस्य पितुः आत्मना राज्ञे दत्तं शापमकथयत् । सोऽब्रवीत्—'वत्स ! न मे प्रियं कृतं

भवता । नैष: तपस्विनामस्माकं धर्मः। स हि राजा पितृवदस्मान् पालयति। तेन रक्ष्यमाणाः वयं विपुलं धर्मं चरामः।

अस्माभिः अनुष्ठीयमानस्य धर्मस्य षड्भागं स लभते। सोऽस्मान् न रक्षति चेत् वयं धर्ममाचरितुं न शक्नुमः। अपि च सोऽस्माकं गृहमभ्यागतः। अतिथिः सर्वथा पूज्यः। सः क्षुधार्तः श्रान्तश्चासीत्। ममैतत् व्रतं न ज्ञातवान्। तस्मात् इदमकार्यं कृतवान्। न शापार्हः कथञ्चिदपि असौ। अनालोच्य सहसा शापं दत्तवानसि। क्षमैवास्माकं तपस्विनां सिद्धिहेतुः। क्षमयैव अयं लोकः परलोकश्च सिध्यतः। क्रोधः चिरकालसंचितं धर्मं तत्क्षणम् अपहरति। सर्वेषां प्राणिनां क्रोध एव प्रधानः वैरी। तत् त्वम् इतः परं क्षमापरो भव। सर्वेन्द्रियाणि संयम्य धर्मं चर इत्युक्त्वा, अत्यन्त-विषण्णहृदयः स शमीकः अन्यतमं शिष्यम् आहूयाब्रवीत् 'वत्स ! गच्छ द्रुतम्। अभिमन्योरात्मजाय राज्ञे इमं शापवृत्तान्तं निवेदय' इति।

सोऽपि तथेत्युक्त्वा सत्वरं गत्वा राजानमाससाद। राज्ञा यथार्हंपूजितः शृङ्गिणा दत्तं शापं निवेदयामास—"राजन्! शमीको नाम महातपाः महर्षिः तव विषये वसति। मृगयार्थं वनं गतेन त्वया निष्प्राणः सर्पः धनुष्कोटयाऽऽदाय तस्य महात्मनः स्कन्धे समारोपितः। एषः तवापराधः क्षमापरेण तेन मुनिना क्षान्तः।

तत्पुत्रस्तु न चक्षमे। पितुरज्ञातमेव सः त्वयि शापं विससर्ज 'इतः सप्तमेऽहनि सर्पाणामधिपः तक्षकः तव मृत्युः भविष्यति' इति। 'तत् यथाशक्ति आत्मनो रक्षां कुरुष्व' इति।

परीक्षित् राजा शापमिमं श्रुत्वा किमिदानीं कर्तुमुचितमिति मन्त्रिभिः सह मन्त्रयामास। निरपराधे महाप्रभावे भूदेववर्ये कृतमात्मनोऽपराधम् अनुस्मृत्य नितराम् अनुशुशोच। अथैतम् अग्रजन्मशापम् अपरिहार्यम् अनुभवैकप्रतीकारं विज्ञाय, नृपतिः सर्वाणि राज्यकार्याणि मन्त्रिषु निचिक्षेप, स्वयं च त्रिपथगातीरं समासाद्य प्रायोपवेशने मतिं बबन्ध। तत्रोपविष्टं तं भृगुगौतमपराशरपिप्पलादादयो महर्षयः पर्यवारयन्।

तदानीं स पार्थिवः सद्यः समुत्पन्नेन विवेकेन लोकयात्रां सम्यक् विमृश्य जलबुद्बुदवत् अल्पकालस्थायिषु इन्द्रियसुखेषु विरक्तो बभूव। आत्मनः शरीरत्यागम् अतिसंनिहितं ज्ञात्वा मरणानन्तरं सुखकारणम् आत्मनः किमिति परिज्ञातुमाचकांक्ष। तस्मिन् अवसरे भगवतः पराशरस्य पौत्रः द्वैपायनस्यात्मजः श्रीशुकः संप्राप्तः। तं प्रत्युत्थानादिना महीपतिरभिननन्द। तमेवं प्राञ्जलिः विज्ञापयामास—'भगवन्! आसन्नमरणस्य मे यत् हितम् तत् ब्रूहि' इति।

अथ व्यासात्मजो भगवान् शुकः परमभागवतानां ब्रह्मर्षीणां राजर्षीणामन्येषां च भक्तानां तथा च भगवद-

वताराणां लोकपावनानि चरितानि श्रावयामास सप्तैरेवाहोभिः। एतेषामेवोपन्यासो भागवतपुराणमिति प्रसिद्धि प्राप्तः। एतान्येव शृण्वतो राज्ञः भगवति अव्यभिचारिणी निष्ठा सञ्जाता येन सप्तमेऽहनि तक्षकेण दष्टोऽपि स स्वरूपादप्रच्युतः परां सिद्धिमवाप।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—शृङ्गी ऋषि को दिये गये महर्षि शमीक के उपदेश का सार संस्कृत में दीजिए।

२—भागवत की रचना कैसे हुई? उसमें क्या वर्णित है?

३—सन्धि-विच्छेद कीजिए—ब्रह्मन्नहम्, क्षमयैव, आत्मनोऽपराधम्।

४—निष्कृतः, उपस्पृश्य, विपर्यायः, भूदेव तथा प्रायोपवेशन शब्दों के अर्थ समझाइये।

———

त्रयोदशः पाठः

अर्जुनकृता भगवत्स्तुतिः

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यञ्च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥१॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥२॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥३॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ॥४॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।।५।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।६।।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।।७।।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—सन्धि-विच्छेद कीजिए—वेत्तासि, भूयोऽपि, नमस्ते, सखेति ।

२—आदिदेवः, अप्रमेयम् तथा लोकत्रये में समास-पदों का विग्रह कीजिए और समास के नाम बताइये ।

३—अनुवाद कीजिए—

(क) भगवन् ! आप अग्नि, वायु, आकाश—सभी हैं ।

(ख) आप का प्रताप अमित और अनन्त है ।

(ग) आप ही जगत् के आदिपुरुष, उसके पालक तथा संहारक हैं ।

चतुर्दशः पाठः

जलम्

वसुन्धरायां प्रायः चतुर्षु त्रयो भागाः जलेन व्याप्ताः। इह जगति सर्वेषु पदार्थनिचयेषु आप एव चराचराणामत्यन्तोपकाराय कल्पन्त इति सुव्यक्तमेव सर्वेषाम्। अतएव 'आपो वै सर्वा देवताः' इत्यादिश्रुतिवचनैः देवतारूपेण निर्दिष्टासु अप्स्वेव सर्वं प्रतिष्ठितमिति आम्नायते। अनुदिवसं सन्ध्योपासनव्यापृतैरास्तिकैः सन्मन्त्रपूताभिरद्भिरेव आत्मनः शुद्धिः सम्पाद्यते। सृष्टस्य चराचरात्मकस्य जगतो ह्याप एव प्रथमकारणमिति 'अप एव ससर्जादौ' इत्यादिना अवगम्यते।

एताश्चापो द्रवरूपाः, घनरूपाः (हिमशकलादौ) बाष्परूपाश्चेति स्वरूपतस्त्रिविधाः समुपलभ्यन्ते। न केवलं प्राणिनां पानाय, वृक्षादीनां जलसेकाय अपि उपयुज्यते सलिलम्। किन्तु बाष्पत्वेन विपरिवर्तितं महीतले मानवानामप्यतिदुष्कराणि कर्माणि करोति। तथा हि अतिविप्रकृष्टस्यापि देशस्य शीघ्रगमनाय निर्मिता बाष्पीयशकटाः, नितरामगाधे अतिदुस्तरे च जलनिधौ अनायासेन यात्राप्रसंगाय विरचिताः बाष्पीयमहानौकाश्च जलादुद्भूतस्य बाष्पनिवहस्य शक्त्यैव हि गच्छन्ति। आधुनिकैः मेधाविभिः यन्त्रेषु सञ्चीयमानात्

ाष्पसमूहात् समुत्पाद्यमाना वैद्युती: शक्ति दीपिका-
ादालोकाय, तन्त्रीद्वारा वार्ताप्रेषणाय, महानगरेषु अनु-
ाणमितस्ततः सञ्चरतां वैद्युतयानानां प्रेरणाय च भवति ।

सामान्यतो जलस्य सन्तापनकाले हि प्रथमं तत्रस्थं ौत्यं प्रणश्यति, भवति च तदनन्तरं सन्तापः । द्रव्यान्तरवत् जलमपि अग्नौ प्रदर्शनमात्रेण न सन्तापं भजते । अतो ्व्यान्तरापेक्षया जलस्यौष्ण्याधिक्याकर्षणे शक्ति- र्तते इति दृश्यते । सन्तप्तं जलं यदा शिशिरीभवति, ादा सन्तापाय यावदौष्ण्यं गृहीतं तावच्च बहिर्निष्कासयति । प्रतो यदा जलं तत्समीपस्थद्रव्यान्तरापेक्षया उष्णतरं भवति, तदा निकटवर्तिनां द्रव्यान्तराणामावश्यक- मौष्ण्यं ददाति । यदा पुनर्द्रव्यान्तरापेक्षया शीततरं जायते, तदा त्वितरद्रव्येभ्यः अपेक्षितातिरिक्तमौष्ण्यं सङ्- गृहणादि । अस्मादेव कारणात् समुद्रोपान्ते वर्तमानेषु नगरेषु, जलसमृद्धवापीकूपतडागादिभिः पूर्णेषु च प्रदेशेषु सर्वदा शैत्यमौष्ण्यं च अपेक्षितान्नातिरिच्येते, नाप्य- ल्पीभवतः ।

सलिलं हि नितान्तं शैत्येन घनीभवति । नवीना- श्च रसतन्त्रज्ञाः बाष्पीययन्त्रैः जलं हिमशकलरूपेण परि- णमयन्ति । एतान्येव हिमशकलानि कतिपये जनाः पानीयस्य शैत्यापादनाय उपयुञ्जते । एवं त्रिष्वेव रूपेषु जलं महोपयोगि वर्तते ।

१२६० २०५६

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—जल के कितने रूप इस पाठ में बताये गये हैं ? प्रत्येक की क्या उपयोगिता है ? उत्तर संक्षेप में संस्कृत में दीजिए ।

२—सन्धि-विच्छेद कीजिए—

अत्यन्तोपकारकं, शक्त्यैव, नवीनाश्च, एतान्येव ।

३—अर्थ लिखिए—शैत्यम्, औष्ण्यम्, मेघाविभिः, समुद्रोपान्ते ।

४—अनुवाद कीजिए—

(क) पानी न हो तो जीना कठिन हो जाय ।

(ख) जल को वेदों में देवता कहा गया है ।

(ग) भाप से रेलगाड़ियाँ चलती हैं ।

(घ) गरम पानी बर्फ से ठण्डा किया जा सकता है ।

पञ्चदशः पाठः

नीतिनवनीतम्

यस्य न विपदि विषादः सम्पदि हर्षो रणे नभीरुत्वम्
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ।। १।।

स पुमानर्थवज्जन्मा यस्य नाम्नि पुरःस्थिते ।
नान्यामङ्गुलिमभ्येति सङ्ख्यायामुद्यताङ्गुलिः ।।२।।

गुरून्कुर्वन्ति ते वश्यानन्वर्था तैर्वसुन्धरा ।
येषां यशांसि शुभ्राणि ह्रेपयन्तीन्दुमण्डलम् ।।३।।

शक्तिवैकल्यनम्रस्य निःसारत्वाल्लघीयसः ।
जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः ।।४।।

भये वा यदि वा हर्षे सम्प्राप्ते यो विमर्शयेत् ।
कृत्यं न कुरुते वेगान्न स सन्तापमाप्नुयात् ।।५।।

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रभवन्तिनद्यः,समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः।। ६।।

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते,
स्वातौ सागरशुक्तिकुक्षिपतितं तज्जायते मौक्तिकं,
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संवासतो जायते ।।७।।

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले
धैर्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात् सः।
जाते समुद्रेऽपि हि पोतभङ्गे
सायांत्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥ ८ ॥

तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम,
सा बुद्धिरप्रतिहता, वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः क्षणेन
सोऽप्यन्य एव भवतीति विचित्रमेतत् ॥९॥

सुसञ्चितैर्जीवनवत्सुरक्षितै-
र्निजेऽपि देहे न नियोजितः क्वचित्।
पुंसो यमान्तं व्रजतोऽपि निष्ठुरै-
रेतैर्धनैः पञ्चपदी न दीयते ॥१०॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
र्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ॥११॥

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं
क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदञ्च
लक्ष्मीः स्वयं मार्गति वासहेतोः ॥१२॥

सन्तापयन्ति कमपथ्यभुजं न रोगाः?
दुर्मन्त्रिणं कमुपयान्ति न नीतिदोषाः?

कं श्रीर्न दर्पयति ? कं न निहन्ति मृत्युः ?
कं स्त्रीकृता न विषयाः परिपीडयन्ति ? ॥१३॥

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥१४॥

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः,
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनान् ।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान्,
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥१५॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—श्रेष्ठ और तुच्छ मनुष्य के क्या लक्षण हैं ? उत्तर प्रथम चार श्लोकों के आधार पर संस्कृत में दीजिए ।

२—लक्ष्मी किसे मिलती है ? उत्तर ११, १२ श्लोकों के आधार पर संस्कृत में दीजिए ।

३—सज्जनों के क्या लक्षण हैं ?

४—विग्रह कीजिए तथा समास के नाम दीजिए—
पञ्चपदी, कापुरुषाः विघ्नभयेन, साधुपदवीम् ।

५—सन्धि-विच्छेद कीजिए—
अर्थवज्जन्मा, सोऽपि, व्यसनेष्वसक्तम् ।

षोडश: पाठ:

विजयमहोत्सवः

(ततः प्रविशतः सेनानायकौ)

थमः—दिष्टया सुप्रभातमद्य स्वातन्त्र्यश्रिया समुल्लसितस्य एकलिंगेशाधिष्ठितस्य मेवाडजनपदस्थस्य।

द्वितीयः—अथ किम्। अहो वर्षाभ्यन्तरेणैव यवनयूथानि विद्राव्य शैलान्तः परिपालिताभिः प्रजाभिः पुनरप्यावासितेयं वीरजननी मेवाडमेदिनी मेवाडकेसरिणा महाप्रतापेन देवेन।

थमः—एवं पुनरपि स्वातन्त्र्यावतारेण देवेन समन्ततः विस्तारिता त्रिलोक्यां विश्रुता सूर्यवंशस्य यशः श्रीः।

तीयः—भद्र! पश्यैतान् देवस्य विजयमहोत्सवमभिनन्दितुं समुत्सुकान् पौरजानपदान्। एतैरलङ्कृतेयं राजधानी परमां सुषमामावहति।

ध्वजसरसिजमालामण्डिता राजमार्गा
मरकतमणिलेखारञ्जिताः कुट्टिमाश्च।
नवविरचितरागालेख्यचित्रास्तराणि
दधति परमशोभां वासितान्यङ्गनानि॥

प्रथमः— (परितो विलोक्य) अदृष्टपूर्वोऽयं खलु विजयमहोत्सवसमारम्भः ।

द्वितीयः—(दूरं विलोक्य) एष सूर्यकुलाधिदैवतम् एकलिङ्गेश्वरमाराध्य प्रत्यागतो देवः सभामण्डपमभ्युपैति यावद् वयं सभामण्डपं प्रविश्यासनपरिग्रहं कुर्मः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः प्रतापसिंहः)

सभ्याः— (अभ्युत्थाय) विजयतां महाराजाधिराजः ।

(इति स्वर्णकुसुमानि विकिरन्ति)

प्रतापसिंहः—(छत्रचामरधरैरुपसेवितो रत्नसिंहासनामारुह्य) प्रियसामन्ताः ! दिष्टया एकलिङ्गेशानुग्रहेण अनुभूयतेऽस्माभिः इदानीमयं मंगलावसरः ।

(ततः सामन्तपौरजानपदमुख्याः मणिमुक्तास्वर्णकुसुमस्रजः अर्पयन्ति)

प्रधानमन्त्री—देवस्य प्रियवयस्यः पृथिवीराजो दिल्लीनगरतः प्रेषयतीदं तुरुष्कमुद्राङ्कितं सन्धिपत्रम् ।

प्रतापसिंहः—तावदुद्घाटय वाचय ।

प्रधानमन्त्री— तथा ।

(इति वाचयति)

'श्रीमन्मोगलेशराजधानीतः स्वातन्त्र्यविक्रमोर्जितं सूर्यकुलावतंसममोघव्रतं महाराजं प्रतापसिंहं प्रणयाभि-

नन्दनपुरस्सरं प्रणिपत्य आवेदयति पृथ्वीराजः यदुभयतोऽमितकोशबलक्षयं परिजिहीर्षुः सार्वभौमः

तुष्टस्तवाप्रतिहतामितविक्रमेण
सम्राट् स्वयं दिशति यन्नृपतिः प्रतापः।
प्रौढप्रतापपरिवर्धितवंशकीर्तिः
कामं प्रशास्तु निरुपद्रवमात्मचक्रम्॥' इति।

प्रतापसिंहः— दिष्ट्याद्य खलु उद्धृतर्णका जाता मेवाडजननी।

प्रधानमन्त्री— स्वातन्त्र्यावतारस्य देवस्यैष लोकोत्तरः प्रभावः।

प्रतापसिंहः— यत्सत्यं प्रकृत्यनुरागायत्ता हि राष्ट्रसम्पदः, तत्प्रियसामन्तवर्याणां पौरजानपदाटविकानां चाप्रतिमराजनिष्ठया प्रोत्साहितः तैरेव सानुरागं मेवाडराज्येऽभिषिक्तः प्रभवत्ययं प्रतापो मेवाडस्वातन्त्र्यं परिरक्षितुम्।

प्रधानमन्त्री— दिष्ट्या महाप्रतापमीश्वरमुपाश्रित्य अद्य कृतकृत्यतां प्राप्तेयं वीरजननी मेवाडभूः।

प्रतापसिंहः— नूनमलोकसाधारणो हि मेवाडवीराणां राष्ट्रभक्तिविभवः। अतः सर्वे राष्ट्रभक्ता वीरोत्तमाः कवीश्वरा अन्ये च माननीयाः।

प्रधानमन्त्री— तथा।

(इति यथार्हं राजशासनानि महार्हरत्नादीनि वितरति)

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— विजयतां देवः। दिष्ट्याऽद्य देवस्य विजय-महोत्सवमभिनन्दितुं सम्प्राप्ता महर्षयः।

प्रतापसिंहः—अविलम्बेन प्रवेशय।

प्रतीहारः— तथा (इति निष्क्रान्तः)

प्रतापसिंहः—(सर्वे सहाम्युत्थाय) भगवतो महानुभावान् अभिवादयते एष प्रतापः।

(इति प्रणमति)

महर्षयः— वत्स! चिरंजीव। विष्णोरंशेनावतीर्णस्य तपनान्वयोद्वहस्य तव दर्शनार्थं वयमत्र समागताः।

प्रतापसिंहः—महानेषोऽनुग्रहः भगवतां महानुभावानाम्।

महर्षयः— वत्स, प्रसन्नाः स्मस्तव कुलाधिदेवनिष्ठया क्षात्रधर्मानुरागेण च। तत्किं ते भद्रं करवाम।

प्रतापसिंहः—भगवन्तः, एकलिंगानुग्रहेण सम्प्रति जातोऽस्म्यहं सकलश्रेयसां भाजनम्। तथापीदमस्तु भरतवाक्यम्—

आम्नायार्थप्रसितमतयो ब्राह्मणाः सिद्धमन्त्राः
सम्पद्यन्तां नरपतिगणा क्षात्रतेजः समिद्धाः।
वैश्याः सर्वे नवनिधियुताः कारवः कारुदीप्ताः
स्वातन्त्र्यश्रीर्विलसतुतरां विश्वतो भारतेऽस्मिन्॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—राणा प्रताप की जन्मभूमि का क्या नाम था ? वे किस वंश में पैद हुए थे ? उनके कुल देवता कौन थे ? प्रश्नों का उत्तर संस्कृत म दीजिए ।

२—विग्रह कीजिए तथा समास का नाम दीजिए—सूर्यवंशस्य, राज-मार्गाः, अपूर्वः, विजयमहोत्सवः ।

३—संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

(क) महाराणा प्रताप बड़े देशभक्त थे ।

(ख) उन्होंने अपनी जन्मभूमि के लिए बड़े कष्ट सहे ।

(ग) उन्होंने अकबर की अधीनता नहीं स्वीकार की ।

४—सन्धि कीजिए—

समन्ततः विस्तारिता, अभिवादयते एषः ।

सप्तदशः पाठः

यज्ञाश्वः

सम्भ्रान्ता बटवः—कुमार ! कुमार ! ! अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेषु श्रूयते । सोऽयमधुना अस्माभिः प्रत्यक्षीकृतः ।

लवः— अश्व इति पशुसमाम्नाये साङ्ग्रामिके च पठ्यते । तद् ब्रूत, कीदृशः ?

बटवः— श्रूयताम्—

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं,
दीर्घग्रीवः स भवति, खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकान् आम्रमात्रान्,
किं वाऽऽख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥

(इत्युपसृत्य हस्तयोराकर्षन्ति लवश्च तैः सह अतिजवेन अश्वसमीपं गतः)

बटवः—पश्यतु कुमारस्तदाश्चर्यम् ।

लवः— दृष्टमवगतं च । नूनमाश्वमेधिकोऽश्वः ।

बटवः—कथं ज्ञायते ?

लवः— ननु मूर्खाः, पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम् । किं न पश्यथ, प्रत्येकं शतसङ्ख्याः कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्च रक्षितारः । यदीह न प्रत्ययस्तद्गत्वापृच्छत ।

(उपसृत्य)

बटवः—भोः भोः ! किंप्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति?

(नेपथ्ये)

अयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा ।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः ।।

लवः—(सगर्वमिव) अहो सन्दीपनान्यक्षराणि ।

बटवः—किमुच्यते ? प्राज्ञः खलु कुमारः ।

लवः—भो भोः ! तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घोष्यते?

(नेपथ्ये)

अरे रे ! महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः ?

लवः—धिग्जाल्मान् ।

यदि ते सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ।
किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ।।

भो भोः बटवः ! परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैन मश्वम् ।

एष रोहितानां मध्ये वराकश्चरतु ।

(प्रविश्य सक्रोधदर्पः)

पुरुषः—धिक् चापलम् । किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णनीरसा ह्यायुधीयश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते । राजपुत्रश्चन्द्रकेतुररिमर्दनः । सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति, तावत् त्वरितमनेन तरुगहनेनापसर्पत ।

बटवः—कुमार ! कृतमनेनाश्वेन । तर्जयन्ति विस्फुरितशस्त्राः कुमारमायुधीयश्रेणयः । दूरे चाश्रमपदमितस्तदेहि, हरिणप्लुतैः पलायामहे ।

लवः— (विहस्य) किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ? (इति धनुरारोपयन) तर्हि मदीयमपि एतदधिज्यं चापं प्रत्युत्तरं दातुं प्रस्तुतम् ।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—आश्रम के बालकों ने राजकुमार लव से घोड़े का कैसा वर्णन किया ? उत्तर संस्कृत के चार-पाँच छोटे-छोटे वाक्यों में लिखिए ।

२—शब्दार्थ दीजिए—

पशुसमाम्नाय, साङ्ग्रामिक, विभीषिका, आयुधीय ।

३—अनुवाद कीजिए—

(क) घोड़ा बड़ा सुन्दर जानवर है ।

(ख) तुम किस मतलब से यहाँ घूम रहे हो ?

(ग) घमण्ड-भरी बात नहीं करनी चाहिए ।

(घ) कुमार ! आओ, भाग चलें ।

४—सन्धि-विच्छेद कीजिए—

सत्येव, अश्वोऽश्वः, खुरास्तस्य, तद्गत्वा ।

अष्टादशः पाठः

महात्मगान्धिनाऽनुसृतो मार्गः

वयं महात्मानं गान्धिनमादरेण राष्ट्रपितेति ब्रूमः। अखिलं विश्वमेव तमभिनवभारतराष्ट्रस्य पितरं ब्रवीति। एतावतो महतस्सम्मानस्य किं कारणमिति विचारणीयमस्माभिः सर्वैः, येन तदाचरणमनुसृत्य तन्मार्गं चावलम्ब्य वयमपि अन्येषां कृतेऽनुकरणीया भवेम, स्वदेशं चाधिकतरमुन्नयेम।

राष्ट्रपितेत्यस्य पदस्य 'राष्ट्रस्य पिते'त्यर्थो भवति, जनयितैव च पितेत्युच्यते। अतो राष्ट्रपिता स एव, यो राष्ट्रस्य जनयिता भवति। महात्मा गान्धी राष्ट्रस्य जनयिता कथमुच्यते? किं ततः पूर्वं भारतराष्ट्रं नैवासीत्? नैवासीत् सत्यम्, अद्यतः प्रायेण चत्वारिंशद्वर्षपूर्वं भारतराष्ट्रं नासीत् यद्यपि भारतदेश आसीदेव। भारतीयजनाः परस्परं विभक्ता विघटिताश्च, अतश्चैव निर्बलाः परतन्त्राश्चासन्। महात्मा गाधी तेषां सङ्घटनं कृत्वा स्वातन्त्र्यप्राप्त्यर्थं तेभ्यः प्रेरणां दत्त्वा, विदेशीयशासनविरुद्धं सत्याग्रहं च कारयित्वा तेषां दुर्वहं परतन्त्रताभारमपहृतवान्, एकेनैव राष्ट्रियतासूत्रेण तानाबध्य स्वतन्त्रांश्च कृत्वा चिरकालादनन्तरं समग्रं देशमेकं सुसङ्घटितं सबलं च राष्ट्रं कृतवान्। राष्ट्रियताबीज-

मुप्त्वा प्रेमामृतेन चाभिषिच्य तन्न केवलं प्ररोहयति स्म, अपितु प्ररोहमप्यनवरतसेकेन वर्धयित्वा वृक्षं कृतवान्। तस्यैव सुमधुरं फलमस्मदीयमभिनवागतं स्वातन्त्र्यम्। अतएव स्वदेशनेतृभिः स्वजनैश्च स राष्ट्रपितेत्युच्यते।

दक्षिणाफ्रिकेति नामके देशे स्वीयेन येन सत्याग्रहेण स स्वदेशनिवासिनां कृतेऽधिकारान् प्राप्तवान्, तस्यार्थः 'सत्ये आग्रहः' इत्यस्ति। तस्य मतेन इमं सत्याग्रहं स्वलक्ष्यप्राप्तेः साधनरूपेण प्रयोक्तुं स एवाधिकृतो यस्त्यक्तसंकुचितस्वार्थः, यः अत्याचारिणः समस्तान् दुर्व्यवहारान् अन्यायांश्च शान्तिपूर्वकं सोढुं समर्थः, य एतान्न प्रतिकरोति, न च स्वासन्तोषं प्रकाशयति। महात्मनो गान्धिनोऽयं दृढो विश्वास आसीद्यत् यदा सत्याग्रहिण एवंविधो व्यवहारो भविष्यति, तदैवात्याचारिणोऽपि हृदये प्रेमदयान्यायादीनां पूर्वसुप्तो भावः क्रमेण जागरिष्यति, तदैव च सः स्वप्रमादं ज्ञात्वा पश्चात्तापं कर्तुं स्वयमेव सचेष्टो भविष्यन्ति। एतद्विपरीतं यदि सत्याग्रही दुराचारान् दुर्व्यवहारान् अन्यायांश्च प्रतिकरोति, अथवा अन्यायिनः प्रहरति, प्रहर्तुं वेच्छति, तर्हि तेषामत्याचारा अन्यायाश्चाधिकाधिकं वर्धिष्यन्ते, तांश्च सोढुमसमर्थः सत्याग्रही हताशो भूत्वा सत्याग्रहं त्यक्तुं विवशो भविष्यति। युक्तमेव स ब्रवीति स्म यत् मलं मलेन, पङ्कः पङ्केन वा प्रक्षालयितुं न जातुं शक्यते। यदि सत्याग्रहिण्यपि हिंसायाः प्रतीकारस्य वा भाव आगच्छेत्तर्हि

अत्याचारिणो हिंसाभावस्तेन कथमन्यथाकर्तुं शक्यते। अतएव तस्य सत्याग्रहस्याधारोऽहिंसाभावप्रेमभावश्च आस्ताम्। एताभ्यामेव सत्याहिंसाभ्यां युक्तेन स्वसत्याग्रहेण महात्मा गान्धी दक्षिणाफ्रीकानिवासिनां भारतीयानां कृते कांश्चिदधिकारान् प्राप्तुमशक्नोत्। अतो यदा स पञ्चदशाधिकोनविंशतिशततमेऽब्दे (१९१५ ई०) भारतं प्रत्यावर्तत, तदा अत्रापीदमेव साधनं प्रयोक्तुमैच्छत्।

अनेनाभिनवेन साधनेन स युगपदेव त्रीणि लक्ष्याणि प्राप्तुमैच्छत्। चिरकालिकदासताशृङ्खलाभ्यो मुक्तिरित्येकं लक्ष्यं, दारिद्र्याशिक्षाभ्यां मुक्तिरिति द्वितीयं, पारस्परिकद्वेषकलहादेः अस्पृश्यतायाश्च निदानभूताया जातिव्यवस्थाया मुक्तिरिति च तृतीयम्। स सत्याग्रहद्वारा राजनीतिकमार्थिकं सामाजिकमिति त्रिविधमपि स्वातन्त्र्यं प्राप्तुमैच्छदित्युक्तं भवत्यनेन। एतदर्थं बहुसङ्ख्यकाः सत्याग्रहिणोऽपेक्षिता आसन्। अतो राष्ट्रियतानिर्भरान् सत्यप्रियान् पुरुषान् स्वसत्याग्रहमार्गेऽनुशासितुं सोऽहमदाबादाख्यनगरस्य पार्श्वे स्थितायां सावरमत्यामेकमाश्रमं संस्थापितवान् यः षट्त्रिंशदधिकोनविंशतिशततमेऽब्दे (१९३६ ई०) वर्धासमीपे स्थितं सेवाग्राममानीतः। अत्रैव निवसन् स द्विविधान् जानान् सज्जीकृतवान्। एके दासता-शृङ्खलाः भङ्क्त्वा राजनीतिकस्वातन्त्र्यं प्राप्तुम्, अपरे च रचनात्मककार्यक्रमे व्यापृता ग्रामोद्योगानां प्रचारं विकासं च कृत्वा दरिद्रेभ्य आर्थिक-

स्वातन्त्र्यं प्राप्तुं सज्जीकृताः। यद्यपि द्विविधा जना नात्यन्तं पृथग्भूतास्तथापि एके प्राधान्येन राजनीतिकं सत्याग्रहं परिचालयन्ति स्म, अपरे च आश्रमे एव तिष्ठन्तः सूत्रोत्पादनवस्त्रवयनादिकम् अकुर्वन् अकारयन् च।

यथा राजनीतिककार्यसञ्चालनार्थं सर्वत्र देशे, सर्वेषु प्रान्तेषु, जनपदेषु च कार्यालया आसन् तथैव ग्रामोद्योग-विकासार्थं स्थाने-स्थाने ग्रामोद्योगसंघा अपि संस्थापिताः। एवमेव शोषितेभ्यः पददलितेभ्यश्च तेषाम स्पृश्यतादिकं दूरीकृत्य समानाधिकारान् दापयितुं स स्थाने स्थाने हरिजन-सेवकसङ्घान् समस्थापयत्, आधारभूत[1]शिक्षानाम्नी-मभिनवां शिक्षापद्धतिं च प्रास्तावीत्, यतस्तस्येदं निश्चितं मतमासीत् यद्यावत् देशे शिक्षाऽभावो भविष्यति वर्तमान-शिक्षापद्धतिर्वा वर्त्स्यंति, तावत् न तु समाजे (शारीरिक) श्रमस्य श्रमिणां च प्रतिष्ठा भविष्यति, नैव चाज्ञानं दूरीभविष्यति। श्रमप्रतिष्ठाऽभावे जना उद्योगिनो न भविष्यन्ति, अज्ञानपरिहाराभावे च ते सङ्कुचितविचारान् परित्यज्य हरिजनान् प्रति उदारा नैव भविष्यन्ति।

एवं स्पष्टमिदं यन्महात्मा प्रदर्शितो मार्गोऽतिव्याप-कोऽस्ति। एतस्यैवांशिकानुसरणेन राजनीतिकं स्वातन्त्र्यं पूर्णतः एव प्राप्तम्, यद्यपि आर्थिकं सामाजिकं च स्वात-न्त्र्यम् अशंत एव। यदि भाविकालेऽपि वयं तत्प्रदर्शित-मार्गस्याधिकाधिकमनुसरणं करिष्यामस्तर्हि क्रमशो वय-

१—बेसिक।

मार्थिकं सामाजिकं चापि स्वातन्त्र्यं निस्सन्देहमेव पूर्णतः प्राप्स्यामः, एवं च दैन्यदारिद्र्यादिकमस्पृश्यतादिकं चास्मद्देशात् सर्वथा दूरीभविष्यति । तदा देशे वस्तुतः एव रामराज्यं भविष्यति, यद्दृष्ट्वा स्वर्गेऽपि महात्मनो गान्धिनोऽन्तरात्मा हर्षनिर्भरो भविष्यति ।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—महात्मा गाँधी को राष्ट्रपिता क्यों कहते हैं ? उत्तर संस्कृत म दीजिए ।

२—महात्मा जी न अपने राष्ट्रीय आन्दोलन का 'सत्याग्रह' नाम क्यों रक्खा ? इस सत्याग्रह के क्या लाभ थे ?

३—सन्धि-विच्छेद कीजिए—

चावलम्ब्य, तस्यैव, गन्धिनोऽयम्, अन्यायांश्च, कांश्चित् ।

४—शब्दार्थ दीजिए—

उप्त्वा, सचेष्टः, प्रतीकारः, दापयितुम् ।

ऊनविंशः पाठः

समस्यापूर्तिः

ततः प्रविशति पत्नीसहितः कोऽपि विलोचनो विद्वान्। 'स्वस्ति' इत्युक्त्वा प्राह—

निजानपि गजान्भोजं ददानं प्रेक्ष्यपार्वती।
गजेन्द्रवदनं 'पुत्रं' रक्षत्यद्य पुनः पुनः॥

ततो राजा सप्तगजान् तस्मै ददौ।

ततो राजा विद्वत्कुटुम्वं तदैव पुरतः स्थितं वीक्ष्य ब्राह्मणं प्राह—'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।'

वृद्धद्विजः प्राह—

'घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनो,
वने वासः कन्दादिकमशनमेवंविधगुणः।
अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत कराम्भोजकुहरे,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

ततो राजा बहूमूल्यान् अपि षोडश मणींस्तस्मै ददौ। ततस्तत्पत्नीं प्राह राजा—'अम्ब! त्वमपि पठ।' देवी प्राह—

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगाः,
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि।

रविर्यात्यवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

राजा तुष्टः सप्तदश गजान् सप्तदश रथांश्च तस्मै ददौ। ततो विप्रपुत्रं प्राह राजा—'विप्रसुत! त्वमपि पठ।' विप्रसुतः प्राह—

विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधीद्राक्षसकुलं,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

तुष्टो राजा विप्रसुतायाष्टादश गजेन्द्रान् प्रादात्। ततः विप्रस्नुषां वीक्ष्य राजा प्राह—'देवि! त्वमपि आशिषं वद।'

विप्रस्नुषा प्राह—देव, शृणु।

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशां,
दृशां कोणो बाणः सुहृदपि जडात्मा हिमकरः।
स्वयं चैकोऽनङ्गः सकलभुवनं व्याकुलयति,
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

चमत्कृतो राजा लीलादेवी-भूषणानि सर्वाण्यादाय तस्मै ददौ।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—कार्य की सिद्धि साधनों से नहीं, पराक्रम से होती है। इस पर संस्कृत में चार वाक्य लिखिए।

२—विग्रह करके समास के नाम दीजिए—

निरालम्बः, रणभुवि, चञ्चलदृशाम्, हिमकरः।

३—अनुवाद करो—

(क) अगस्त्य मुनि ने सारा समुद्र ही सोख लिया।

(ख) राम नें सारे राक्षसकुल का विध्वंस कर दिया।

(ग) सूर्य प्रतिदिन आकाश को पार करते हैं।

विंशः पाठः

विद्युत्

विद्युत् आधुनिकविज्ञानस्य महत्तमाविष्कारः। अनया तान्युपयोगीनि सुखप्रदानि च उपकरणानि दत्तानि येषां कल्पनाऽपि कस्यापि मनसि नागता अद्यतः पञ्चाशद्वर्षाणि प्राक्। इयमद्भुतशक्ति अस्माकं जीवनस्य कृते एतावदपेक्षिता भविष्यतीति केन विदितं तदानीम्? क्षणार्धेनैव विद्युद्दीपैः[1] अन्धतमसेऽपि देदीप्यमानः प्रकाशो भवति, कतिपयैरेव क्षणैर्विद्युद्व्यजनैस्तापोपशमो भवति, विद्युत्तापकेन[2] च शीतोपशान्तिर्जायते। एवं च विद्युदाविष्कारेण ग्रीष्मशीतर्त्वोः नाममात्रमेवावशिष्टमिदानीम्, एतस्य च कृते न धूमसहनमनिवार्यं न च तैलदुर्गन्धः। यद्यद्य विद्युदाविष्कारो नाभविष्यत् तर्हीदानीं न चलचित्रप्रदर्शनं, न दूरध्वनिप्रसारणं, न तन्त्री-द्वारा दूरलेख-[3]प्रेषणं, न दूरदर्शनं[4] न चान्यानि विद्युच्छक्त्या सम्पाद्यमानानि कार्यणि समभविष्यन्। साम्प्रतमयोमार्गगन्त्र्यो, वायुयानानि चाऽपि विद्युच्छक्त्या परिचाल्यन्ते। सर्वविधासूद्योगशालासु सुमहान्त्यपि यन्त्राणि विद्युच्छक्त्यैव चलन्ति।

१—बल्ब, २—एलेक्ट्रिक हीटर, ३—तार, ४—टेलीविजन।

इयं शक्तिः घर्षणादुत्पद्यते। यदा रूक्षकेशैः क्षौमाविकवस्त्रैर्वा घृष्यन्ते कंकतिकास्तदा तासु लघुवस्तूनि उद्वोढुं शक्तिरुत्पद्यते। इयमेव विद्युच्छक्तिरित्युच्यते। अनयैव विद्युदुत्पादनं क्रियते। मेघानां पारस्परिकसंघट्टनादपि विद्युदुत्पद्यते किन्तु नेयमुपयोगिनी, प्रत्युतानिष्टकरी एव। यया पुनः विद्युद्दीपाः प्रज्वाल्यन्ते, सुमहान्ति यन्त्राणि वा परिचाल्यन्ते, अन्यानि वा चलचित्रप्रदर्शनादीनि मनोरञ्जकानि कार्याणि क्रियन्ते, सा विद्युत् महोपयोगिनी। इयमपि द्विविधा भवति। एका असौ या एकस्यामेव दिशि प्रवर्तते। इयमृजुविद्युद्धारे[1]त्युच्यते। अपरा असौ या क्रमेण पुरः पश्चाच्चोभयदिशि प्रवर्तते। इयं प्रत्यावर्तकधारे[2]त्युच्यते यत इयं प्रथमं पुरो धावति, अनन्तरं ततः प्रत्यावर्त्य पश्चात् प्रवर्तते। अनिशं स्पन्दनशीलत्वादियं 'स्पन्दनधारे' त्यपि वक्तुं शक्यते। इयं धारा ऋजुधारापेक्षयाऽधिकतरं विपज्जनिका भवति यत ऋजुधारायाः तन्त्र्यः[3] स्वस्पृष्टं जनं दूरमस्यन्ति किन्तु प्रत्यावर्तकधारायास्तन्त्र्यः स्वस्पृष्टं जनं स्वस्मिन्नेव सञ्चयन्ति, एवं च बहुशो मृत्युकारणं भवन्ति। तथापि प्रथमापेक्षया अल्पव्ययेनैवोत्पाद्यमानत्वात् इयमेव आधिक्येनोपयुज्यते। महोद्योगशालानां यन्त्राण्यनयैव परिचाल्यन्ते।

विद्युदुत्पादनं 'डायनेमो' इत्याख्येन यन्त्रेण क्रियते। अस्मिन् यन्त्रे चुम्बका निहिता भवन्ति। एषु चुम्बकेषु

१—डी॰ सी॰, २—ए॰ सी॰, ३—तार।

यदा तन्त्र्यो वेगेन आवर्त्यन्ते,[१] तदा तेषु स्वयमेव विद्युदुत्पद्यते। इदं यन्त्रं प्रायेण उच्छ्रितस्थानात् महता वेगेन पततो जलस्य शक्त्या परिचाल्यते। किन्तु यत्र जलधाराशक्तिर्न प्राप्यते, तत्रेदं यन्त्रं तैलेन वाष्पेण वा परिचाल्यते।

आशास्यते यत् यदा स्वदेशे विद्युच्छक्तियोजनाः समाप्स्यन्ति तदा प्रतिग्रामं विद्युत्प्रसारो भविष्यतीति।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१--विद्युत् से होने वाले तीन लाभों का नाम बतलाइये। उत्तर संस्कृत में दीजिए।

२--विद्युत् कितने प्रकार की होती है। संक्षेप में उनका वर्णन कीजिए।

३--विद्युत् कैसे पैदा होती है ?

४--शब्दार्थ कीजिए--

उपकरणानि, देदीप्यमानः अनिष्टकारी।

---

१. घुमाये जाते हैं।

एकविंशः पाठः

रामकृतः सीतापुनर्ग्रहः

लक्ष्मणः—— भोः भोः, अद्य खलु भगवता वाल्मीकिना प्रजाः सहास्माभिराहूय कृत्स्न एव जङ्गमः स्थावरश्च भूतग्रामः स्वप्रभावेण सन्निधापितः। आदिष्टश्चाहमार्येण——वत्स लक्ष्मण! भगवता वाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिताः स्म। तद्गङ्गातीरमातोद्यस्थानमुपगम्य क्रियां समाजसंनिवेश इति। कृतश्च यया समुचितस्थानसंनिवेशः। अयं तु——

राज्याश्रमनिवासेऽपि प्राप्तकष्टमुनिव्रतः।
वाल्मीकिगौरवादार्य इत एवाभिवर्तते।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—— वत्स लक्ष्मण! अपि स्थिता रङ्गप्रेक्षकाः?

लक्ष्मणः—— अथ किम्। इदञ्चास्तीर्णं राजासनम्। तदुपविशत्वार्यः।

(रामः उपविशति)

लक्ष्मणः—— प्रस्तूयतां भोः!

सूत्रधारः——(प्रविश्य) भोः भोः, भगवान् भूतार्थवादी प्राचेतसः सस्थावरजङ्गमं जगदाज्ञापयति यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं करुणाद्भुतरसं च किञ्चिदुपनिबद्धं; तत्र काव्यगौरवादवधातव्यम् इति।

(नेपथ्ये)

हा आर्यपुत्र ! हा कुमार लक्ष्मण ! एकाकिनीं मन्दभागिनीमशरणामरण्ये आसन्नप्रसववेदनां हताशां श्वापदा मामभिलषन्ति। साऽहमिदानीं मन्दभागिनी भागीरथ्यामात्मानं निक्षेप्स्यामि।

लक्ष्मणः—(आत्मगतम्) कष्टं बतान्यदेव किमपि !

सूत्रधारः—विश्वम्भरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गंगादेव्यां विमुञ्चति ॥

(इति निष्क्रान्तः)

प्रस्तावना

(ततः प्रविशति उत्सङ्गितैकैकदारकाभ्यां पृथिवीगङ्गाभ्यामवलम्बिता सीता।)

रामः— वत्स लक्ष्मण ! असंविज्ञातम् अन्धतमसमिव प्रविशामि। धारय माम्।

देव्यौ— समाश्वसिहि कल्याणि दिष्ट्या वैदेहि वर्धसे।
अन्तर्जले प्रसूताऽसि रघुवंशधरौ सुतौ ॥

सीता— (समाश्वस्य) दिष्टचा दारकौ प्रसूताऽस्मि। हा आर्यपुत्र ! (इति मूर्च्छति।)

लक्ष्मणः—(पादयोर्निपत्य) आर्य ! आर्य !! दिष्टचा वर्धामहे। कल्यणाप्ररोहो रघुवंशः। (विलोक्य) हा हा कथं प्रमुग्धः एवार्यः। (वीजयति)

पृथ्वी— वत्से ! समाश्वसिहि।

सीता— हा अम्ब ! ईदृश्यहं त्वया दृष्टा।

पृथ्वी—एहि वत्से, एहि पुत्रि । (इति सीतामालिङ्ग्य मूर्च्छति)
रामः—करुणतरं खल्वेतद्वर्तते ।
भागीरथी—विश्वम्भराऽपि नाम व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन । यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मोहग्रन्थिरन्तश्चरश्चेतनावतां संसारतन्तुः । देवि भूतधात्रि ! वत्से वैदेहि ! ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।
पृथिवी— (आश्वस्य) देवि ! सीतां प्रसूय कथमाश्वसिमि ? सोढश्चिरं राक्षसमध्यवासस्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः ।
भागी॰— को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तोर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ।
सीता—(रुदती कृतांजलिः) नयतु ममात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा ।
भागी॰—शान्तम् । अविलीना संवत्सरसहस्राणि भूयाः ।
पृथिवी—वत्से ! अवेक्षणीयौ ते पुत्रकौ ।
सीता— अनाथास्मि, किमेताभ्याम् ?
देव्यौ— जगन्मंगलमात्मानं कथं त्वमवमन्यसे ।
आवयोरपि यत्संगात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते ।।
लक्ष्मणः—आर्य ! श्रूयताम् ।
रामः— शृणोतु लोकः ।
सीता— भगवत्यौ ! क एतयोः क्षत्रियोचितं कर्म करिष्यति ?

राम:— एषा वसिष्ठगुप्तानां रघूणां वंशनन्दिनी ।
कष्टं सीताऽपि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति ।।

भागी०—पुत्रि ! किं तवानया चिन्तया ? एतौ हि वत्सौ स्तन्यत्यागात् परेण भगवतो वाल्मीकेरर्पयिष्यामि । स एनयोः क्षत्रकर्म करिष्यति ।

राम:— सुविचिन्तितं भगवत्या ।

पृथिवी— एहि वत्से ! पवित्रीकुरु रसातलम् ।

राम— हा प्रिये ! लोकान्तरं गतासि ।

सीता— नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा । न शक्तास्मि ईदृशं जीवलोकपरिवर्तमनुभवितुम् ।

पृथिवी— मन्नियोगतः स्तन्यत्यागं यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व । परेण तु यथा ते रोचिष्यते ।

भागी०— एवं तावत् । (इति निष्क्रान्ते देव्यौ सीता च ।)

राम:— कथं विलय एवं वैदेह्याः सम्पन्नः । हा देवि ! हा चारित्रदेवते ! लोकान्तरं पर्यवस्थितासि ।

(इति मूर्च्छति)

लक्ष्मण:— भगवन् वाल्मीके ! परित्रायस्व । एष काव्यार्थः । (नेपथ्ये) अपनीयतामातोद्यम् । भो भोः सजंगमस्थावरा प्राणभृतः, पश्यतेदानीं महर्षिणा भगवता वाल्मीकिनाऽभ्यनुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम् ।

लक्ष्मणः—(विलोक्य)

मन्थादिव क्षुभ्यति गाङ्गमम्भो
व्याप्तं च दर्वाषिभिरन्तरिक्षम् ।
आश्चर्यमार्या सह देवताभ्यां
गंगामहीभ्यां सलिलादुदेति ।।

(पुनर्नेपथ्ये)

अरुन्धति जगद्वन्द्ये गंगापृथ्व्यो जुषस्व[1] नौ ।
अर्पितेयं तवावाभ्यां सीता पुण्यव्रता वधूः ।।

(ततः प्रविशति अरुन्धती सीता च ।)

अरुन्धती—त्वरस्व वत्से वैदेहि मुञ्च शालीनशीलताम् ।
एहि जीवय मे वत्सं प्रियस्पर्शेन पाणिना ।।

सीता— (ससम्भ्रमं स्पृशन्ती) समाश्वसितु समाश्वसितु आर्यपुत्रः ।

रामः— (समाश्वस्य सानन्दम्) भोः किमेतत् । (दृष्ट्वा सहर्षाद्भूतम्) कथं देवी । (संलज्जम्) अये ! अम्बा मेऽरुन्धती सर्वे च प्रहृष्यन्त ऋष्यशृंगशान्तादयोऽस्मद्गुरवः ।

अरुन्धती—वत्स ! एषा भगवती भगीरथकुलदेवता सुप्रसन्ना गंगा । इयञ्च ते श्वश्रूर्भगवतीवसुन्धरा ।

रामः— कथं कृतमहापराधो भगवतीभ्यामनुकम्पितः । प्रणमामि वः ।

१—जानिए, समझिए ।

अरुन्धती—भोः भोः पौरजानपदाः, इयमधुना भगवतीभ्यां जाह्नवीवसुन्धराभ्यामेवं प्रशस्यमाना, ममारुन्धत्याः समर्पिता, पूर्वं च भगवता वैश्वानरेण निर्णीतपुण्यचारित्रा सब्रह्मकैः देवैः संस्तुता सीता दवी परिगृह्यतामिति कथमिह भवन्तो मन्यते।

लक्ष्मणः—आर्य ! एवमार्ययाऽरुन्धत्या निर्भर्त्सिताः पौरजानपदाः कृत्स्नश्च भूतग्राम आर्यां नमस्कुर्वन्ति, लोकपालाः सप्तर्षयश्च पुष्पवृष्टिभिरुपतिष्ठन्ते।

अरुन्धती—जगत्पते रामचन्द्र !

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे॥

सीता— (स्वगतम्) जानात्यार्यपुत्रः सीताया दुःखं परिमार्ष्टुम्।

रामः— यथा भगवत्यादिशति।

लक्ष्मणः— कृतार्थोऽस्मि।

सीता— प्रत्युज्जीवितास्मि।

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः कुशलवौ च)

वाल्मीकिः—वत्सौ कुशलवौ, एष वां रघुपतिः पिता, एष लक्ष्मणः कनिष्ठतातः, एषा सीता जननी। एष राजर्षिजनको मातामहः।

सीता— (सहर्षकरुणाद्भुतम्)—कथं तातः ।
कुशलवौ—हा तात, हा अम्ब, हा मातामह !
रामलक्ष्मणौ—(सहर्षमालिङ्ग्य) ननु वत्सौ ! पुण्यैः प्राप्तौ स्थः ।
वाल्मीकिः—रामभद्र उच्यताम् किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि ।
रामः— अतः परमपि प्रियमस्ति ? तथापीदमस्तु— 'मङ्गल्या मनोहरा चेयं कथा गंगेव जगत् पापेभ्यः पुनातु, श्रेयांसि च वर्धयतु' इति ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—अपनी नाटच-कृति का अभिनय कराने में वाल्मीकि जी का क्या उद्देश्य था और उसमें वे कहाँ तक सफल हुए ? संस्कृत में उत्तर दीजिए ।

२—इस छोटे से नाटक में सीता जी के जीवन की जो घटनायें दिखाई गई हैं, उन्हें संक्षेप में बताइये ।

३—अनुवाद कीजिए—

(क) वाल्मीकि जी ने सीता के प्राण बचाये थे ।

(ख) अरुन्धती जी वशिष्ठ की पत्नी थीं ।

(ग) कुश और लव अपने पिता राम की ही भाँति बड़े प्रतापी थे ।

(घ) महर्षि वाल्मीकि ने राम और सीता का मेल करा दिया ।

४—'सोढ' में कौन सी धातु है ? उसका रूप किस पद (आत्मने० या परस्मै०) में चलता है ?

द्वाविंशः पाठः

शबरसेनापतिः

तस्य च महतः शबरसैन्यस्य मध्ये प्रथमे वयसि वर्तमानम्, अतिकर्कशत्वात् आयसमयमिव निर्मितम् अपत्यमिव विन्ध्याचलस्य, अंशकावतारमिव कृतान्तस्य, सहोदरमिव पापस्य, सारमिव कलिकालस्य मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यम् ।

आसीच्च मे मनसि—'अहो ! मोहप्रायमेतेषां जीवितं, साधुजनगर्हितं च चरितम् । तथा हि—पुरुषपिशितोपहारे धर्मबुद्धिः, आहारः साधुजनगर्हितो मधुमांसादिः, श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवारुतम्, समुपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः, राज्यं शून्यासु अटवीषु, आपानकमुत्सवः, मित्राणि क्रूरकर्मसाधनानि धनूंषि, सहाया विषदिग्धमुखा भुजङ्गा इव सायकाः, कलत्राणि बन्दीकृताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः, पशुरुधिरेण देवतार्चनम्, मांसेन बलिकर्म, चौर्येण जीवनम्, यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति, तदेव उत्खातमूलमशेषतः कुर्वते ।' इति चिन्तयत्येव मयि शबरसेनापतिः अटवीभ्रमणसमुद्भवं श्रममपनिनीषुः आगत्य तस्यैव शाल्मलीतरोरधश्छायायां परिजनोपनीतपल्लवासनं समुपाविशत् । अन्यतरस्तु शबरयुवा कमलिनी-

पत्रपुटेन अरविन्दकोशरजःकषायमम्भः प्रत्यग्रोद्धृताश्च मृणालिकाः समुपाहरत् । आपीतसलिलश्च सेनापतिस्ता मृणालिका, क्रमेणादशत् । अपगतश्रमश्च उत्थाय परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबरसैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैरभिमतं दिगन्तरमयासीत् ।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—शब्दार्थ दीजिए—आयसमयम्, मोहप्रायम, पिशितोपहारः, आपानकम्, अशेषतः, पत्रपुटम् ।

२—समास के विग्रह तथा नाम दीजिए—
शकुनिज्ञानम्, उत्खातमूलम्, आपीतसलिलः ।

३—प्रस्तुत पाठ के आधार पर जंगली जातियों की दिनचर्या पर पाँच वाक्य संस्कृत में लिखिए ।

४—'उत्खात' में कौन-सी धातु है ? प्रथम पाँच लकारों में इसके रूप याद कीजिए ।

त्रयोविंश: पाठ:

दिलीपस्य गोसेवा

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते, जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच ।।१।।

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया ।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत् ।।२।।

निवर्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः ।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् ।।३।।

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां
कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः
सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ।।४।।

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ।।५।।

वसिष्ठधेनोरनुयायिनं त-
मावर्तमानं वनिता वनान्तात् ।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्ति-
रुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ।।६।।

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता ।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृंगान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ।।७।।

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ
समाप्य सांध्यं च विधिं दिलीपः।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं
भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम् ॥८॥

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥६॥

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—दिलीप की गो-सेवा पर पाँच वाक्य संस्कृत में लिखिए।

२—सौरभेयी, सुरभि, कण्डूयनम्, निषेदुषीम् तथा उपोषित शब्दों के अर्थ बताइए।

३—समास विग्रह कीजिए और नाम दीजिए—
स्वैरगतैः, वनान्तात्, शृंगान्तरम्।

४—संस्कृत में अनुवाद कीजिए—
(क) महाराज प्रतिदिन नन्दिनी को जंगल ले जाते थे।
(ख) बछड़े को दूध पिलाकर बाँध दिया करते थे।
(ग) महारानी सुदक्षिणा साँझ होने पर महाराज की प्रतिदिन प्रतीक्षा करतीं।
(घ) दिलीप नन्दिनी के सो जाने पर ही सोते थे।
(ङ) गो-संवर्धन में ही हमारे देश का कल्याण है।

चतुर्विंशः पाठः

पाञ्चवर्षिकी योजना

सप्तचत्वारिंशदधिकोनविंशतिशततमात् ख्रिस्तीयाब्दात् (१९४७ ई०) पूर्वमस्मद्देशे विदेशीयाः शासका आसन्। ते सर्वाणि कार्याणि मुख्यतः स्वहितदृष्ट्यैवाकुर्वन्, न पुनः अस्माकमुन्नतेः समृद्धेर्वा दृष्ट्या। अस्मादेव कारणात् पूर्वोक्तकालात् प्राक् अस्मद्राष्ट्रस्य उन्नत्यर्थं विकासार्थं वा न काऽपि योजना कृता, तदभावे च न कोऽपि सविशेषो विकासोऽस्य अभूत्। यथा कृषिप्रायेऽप्यस्मद्देशे उत्पाद्यमानमन्नं समस्तदेशनिवासिभ्यो न पर्याप्तमभवत्। फलतः प्रभूतमन्नं विदेशेभ्य आनीयते स्म, यदर्थं पुष्कलं धनं दीयते स्म। किन्तु तेनैव धनेन कृषेरुन्नतिं कर्तुमन्नोत्पादनं च वर्धयितुं कोऽपि प्रयासो न क्रियते स्म। देशहितदृष्ट्या नेदं कथमपीष्टमासीत्।

अतएव यदैव अस्मद्देशे विदेशीयशासनं समाप्नोत्, स्वनेतारश्च शासनकार्यं स्वहस्तेषु गृहीतवन्तस्तदैव ते इदं निश्चितवन्तो यत् राष्ट्रहितार्थं यान्यपि कार्याणि सम्पादनीयानि, सर्वप्रथमं तेषां पौर्वापर्यं, तेषां सम्पादनायापेक्षितमल्पतमं धनं कालावधिश्च निश्चीयन्ताम्, अनन्तरं स्वसाधनानुसारं कार्यमारभ्यताम्। एतदर्थं ते समितिमेकां स्थापितवन्तो या योजनासमितिरित्युच्यते।

इयमेव समितिः सर्वं विचार्य प्रथमं पञ्चभिर्वर्षैः सम्पादयितुं योग्यानां कार्याणां यद्विवरणं[1] प्रकाशितवती सैव प्रथमपाञ्चवर्षिकी योजनेति नाम्ना प्रथिता। स्वदेशे जीविकासाधनेषु कृषेरेव सर्वप्रधानत्वात् अस्यां योजनायां तस्या एव सर्वाधिकं महत्त्वं स्वीकृतं, तस्या एव च समुन्नत्यै सविशेषं निवेदनं कृतम्। कृष्याश्रितानां ग्रामोद्योगानामपि विकासोऽपेक्षित उक्तः। एतदपेक्षितानि साधनान्यपि तत्र विवृतानि। एवं प्रथमपाञ्चवर्षिकी योजना प्रायेण कृषिप्रधानैव। या पुनः द्वितीयपाञ्चवर्षिकी योजना इदानीं क्रियते, तस्यां महोद्योगेभ्य एव प्राधान्यं दीयते इति समाचारपत्रेषु प्रकाशितेभ्यः विवरणेभ्यः स्पष्टम्। अतएव औद्योगिको विकासः प्रसारश्च द्वितीययोजनायाः प्रधानलक्ष्यमिति वक्तुं शक्यते।

यतः सेचनमव कृषेः सर्वाधिकं प्रधानं साधनम्, अतः कृषिप्रधाने देशे सेचनस्य उपयुक्ता उचिता वा व्यवस्था कर्तव्या शासनेन। देशस्य येषु प्रान्तेषु द्वित्रानेव मासान् वृष्टिर्भवति स्म, तेषु प्राचीनकालेऽपि सेचनस्य कृत्रिमोपायाः शासनेन क्रियन्ते स्मेति प्राचीनकाव्यादिभ्यः स्पष्टं भवति। योजनासमितिरपि स्वीये विवरणपत्रे सेचनस्य कृत्रिमाणि साधनानि कुल्यादीनि विकासयितुं निवेदनं कृतवती। तदनुसारं यन्त्रविदा[2] परामर्शेन आसम्पूर्णवर्षं प्रवहन्तीषु नदीषु बन्धान् निर्माय, जल-

१—रिपोर्ट, २—इञ्जीनियर।

प्रवाहमवरुध्य पूर्वनिर्मितेषु जलभाण्डारेषु जलं संचित्य, तेभ्यश्च कुल्या[1] निष्कास्य तद्द्वारा सेचनस्य प्रबन्धः क्रियते। एताः योजना उपत्यकायोजना उच्यन्ते यतः पूर्वोक्ता बन्धाः प्रायेण नद्यां तत्रैव विरच्यन्ते यत्र साऽतिगभीरायामुपत्यकायां प्रवहति, यत्र च तामुपत्यकामुभयतः उन्नताः पर्वता भवन्ति। यतः ईदृशेषु स्थानेषु केवलं नदीप्रवाहमवरोद्धुं बन्धोऽपेक्ष्यते, स च अल्पेनैव व्ययेन अत्युच्छ्रितो निर्मातुं शक्यते। बन्धस्य निर्माणात् प्राक् तस्य शिलान्यासार्थं पर्याप्तगभीरं खननमपेक्ष्यते। एतच्च नदीप्रवाहपरिवर्तनाऽभावे न सम्भवति । अतः सर्वप्रथममन्तभूमार्गं[2] निर्माय नदीजलम् एतद्द्वारा निष्कास्यते, पुनः प्रवाहवेगे विरते खननं कृत्वा बन्धस्य शिलान्यासः क्रियते।

प्रथमपाञ्चवर्षिकयोजनान्तर्गतं पञ्चत्रिंशदधिकं शतं (१३५) योजनाः सन्ति। आसु एकादश बहुप्रयोजनाः षष्टिसङ्ख्याकाः सेचनमात्रप्रयोजनाः, चतुष्षष्टि सङ्ख्याश्च विद्युदुत्पादनमात्रप्रयोजनाः सन्ति। बहुप्रयोजनासु मुख्यास्तावत् भाखरा, हीराकुण्ड, दामोदर, तुंगभद्रा, मयूराक्षी, रिहण्डबन्धयोजनाः। एभ्यो बहुप्रयोजनेभ्यो बन्धेभ्योऽनेके लाभाः। कृषिसेचनं तावत् प्रथमो लाभः, द्वितीयः पुनः जवप्रवाहनियन्त्रणेन प्लावनभयस्य निवृत्तिः तृतीयश्च लाभः विद्युच्छक्त्युत्पादनं येनोद्योगशालासु

१—नहर, २—सुरंग।

सुमहान्ति यन्त्राणि परिचालयिष्यन्ते, विद्युत्प्रकाशस्तु-लप्स्यत एव। चतुर्थो लाभोऽयमेव यत् प्रवाहवेगे मन्दीभूते नद्यो नाव्या भविष्यन्ति, येन पण्यानां[1] यातायाते सौकर्येण अल्पव्ययेन च भविष्यतः। एवमन्येऽपि बहवो लाभाः।

अद्यावधि एता योजना अपूर्णा एव, न सर्वथा सम्पूर्णाः। तथापि एतासामांशिकेन साहाय्येनापि देशोऽन्नविषये स्वतः पूर्णो जातः। यदा इमा बहुप्रयोजना योजनाः पूर्णा भविष्यन्ति, तदा कृषेः उन्नत्या उद्योगानां विकासेन चास्मदीयः प्रेष्ठः देशः समृद्धेः परां कोटिं प्राप्स्यति।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१—वर्तमान राष्ट्रीय सरकार ने शासन-सूत्र हाथ में लेते ही क्या किया ?

२—प्रथम पंचवर्षीय योजना में किसको प्रधानता दी गई और क्यों ? उत्तर संस्कृत में दीजिये।

३—नदी म बाँध कैसे बाँधे जाते हैं ? उनसे क्या-क्या लाभ होते ह ?

४—सन्धि-विच्छेद कीजिए—उन्नतिः, साधनान्यपि, अत्युच्छ्रितः।

५—योजना तथा वन्धः शब्दों में कौन-सी धातुएं हैं ? लट्, लोट् तथा लङ् में रूप याद कीजिए।

१—माल

पञ्चविंशः पाठः

राष्ट्रध्वजः

'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च'—इतीयम् अतिशोभना भणितिर्यथा यावच्च वैयक्तिकजीवनेषु चरितार्था भवति, तथैव तावदेव च राष्ट्रजीवनेष्वपि भवति। विश्वस्येतिहासेऽतिप्राचीनकालादारभ्य अद्यावधि कियन्ति राष्ट्राणि उन्नतिशिखरमारुह्य कालान्तरेऽवनतिगर्ते पतितानि, कियन्ति चान्यानि अवनतिगर्तान्निष्क्रम्य उन्नतिशिखरमारूढानीति वक्तुमशक्यम्। सत्यमिदं प्रायेण सर्वेषां राष्ट्राणां विषये। एवं प्रत्येकं राष्ट्राणामुत्थानपतनयोः, उत्कर्षापकर्षयोः, संकोचविस्तारयोः, प्रगत्यवरोधयोश्च स्वीय इतिहासो भवति। राष्ट्रस्यानेन नवेतिहासेन तद्ध्वजस्यापि इतिहासः सम्बद्धो भवति। यदा कदापि किमपि राष्ट्रं शत्रुभिराक्रान्तं स्वस्वातन्त्र्यमतएव च आत्मसम्मानमपहारयति, तदैव तद्राष्ट्रं स्वध्वजसम्मानमपि अपहारयति; यावच्च परापहृतं स्वातन्त्र्यं पुनः न प्राप्नोति, तावत्तद्ध्वजोऽपि अन्यराष्ट्रैः न सम्मान्यते-नाद्रियते। यदि च स्वस्य राष्ट्रध्वजस्य सम्मानं रक्षितुं प्राणपणेन प्रयतन्ते कस्यापि देशस्य सर्वे निवासिनः, तर्हि स देशः कदापि कथमपि परहस्तगतो न भवतीत्यपि ध्रुवम्। अतएव विश्वस्य सर्वेष्वपि जीवितेषु राष्ट्रेषु स्वध्वजस्य सम्मानरक्षार्थं

राष्ट्रकैः प्राणा अपि पणीक्रियन्ते, यस्य च राष्ट्रस्य जनैः एवं नाचर्यंते, न तज्जीवितं—मृतं म्रियमाणमेव वा तत्—मन्यते ।

यतः प्रभृति अस्मदीयो देश आङ्गलदेशीयैः स्वायत्ती-कृतस्तत एवास्माकं न कोऽपि स्वकीयो ध्वज आसीत् । तेषामेव ध्वजोऽस्मद्ध्वज आसीत् यतो वयं दासा आस्म; दासानां च ध्वजः स एव, यस्तेषां स्वामिनां भवति । अतएव सर्वेष्ववसरेषु तेषां 'यूनिन-जैक' इत्याख्यो ध्वज एव उच्छ्रीयते स्म । परन्तु भगवत्कृपया वयमिदानीं स्वतन्त्रा, अस्माकं चाधुना अस्ति स्वीयो ध्वजः । यद्यप्ययं ध्वजः स्वतन्त्रताप्राप्तेः प्रागपि आसीत्, एतमेव च गृहीत्वा अस्माकं नेतारः स्वतन्त्रतासंग्रामं कृतवन्तः, द्विचत्वारिंशदधिकोनविंशतिशततमे ख्रिस्तीयाब्दे (१९४२ ई०) च सर्वप्रसिद्धं सत्याग्रहमारब्धवन्तः; तथापि तदानीं स पक्षविशेषस्य ध्वज आसीत् । सप्त-चत्वारिंशदधिकोनविंशतिशततमस्य ख्रिस्तीयाब्दस्य (१९४७ ई०) अगस्तमासस्य पंचदश्यां तिथौ स्वदेशे परतन्त्रतापाशादुन्मुक्ते जाते राष्ट्रध्वजस्य स्वरूपं निर्धार-यितुं संविधानपरिषदा या समितिः[१] संस्थापिता, सा पूर्वागतस्य त्रिवर्ण-ध्वजस्य[२] तन्तुचक्रस्य[३] स्थाने अशोकस्य धर्मचक्रं चक्रे । पूर्वागताः पिण्याकश्वेतहरिताः वर्णास्तेषां क्रमश्च पूर्ववदेव अतिष्ठन् ।

१—पार्टी, २—तिरंगा झंडा, ३—चरखा ।

सम्राजोऽशोकस्य सत्याहिंसादिधर्मद्योतकस्य धर्मचक्रस्य राष्ट्रध्वजप्रतीकत्वेन स्वीकारेण भारतस्य वर्तमानशासनस्यायं दृढो विश्वासः सूचितो भवति यत्सत्याहिंसादिधर्मस्य बलेनैव सुखतरं सुष्ठुतरं च राज्यं परिचालयितुं प्रजाश्च पालयितुं शक्यन्त इति। अस्या एव स्वकीयशान्तिनीतेः प्रचार इदानीमनेन स्वदूतद्वारेण क्रियते। एतदतिरिक्तमिदं चक्रं भगवतो भुवनभास्करस्य रथचक्रस्यापि प्रतीकं ग्रहीतुं शक्यते, तथा चेदं जीवनस्य प्रगतेश्च सूचकं भवति। अथवेदं कमनीयकान्तेः कंसरिपोर्भगवतः कृष्णस्य साधुरक्षकस्यासाधुविनाशकस्य च सुदर्शनचक्रस्यापि प्रतीकं भवितुं शक्नोति।

यदस्मिन् त्रयो वर्णाः पिण्याकश्वेतहरिताः, तेषां पिण्याकवर्णः सर्वतः उपरि, श्वेतो मध्ये, हरितश्च सर्वतोऽधः विद्यते। येषां भावानां प्रतीकं चक्रमुक्तं, प्रायेण तेषामेव इमे वर्णा अपि सन्ति। ऊर्ध्ववर्ती पिण्याकवर्णस्त्यागस्य तपसश्च, मध्यवर्ती श्वेतवर्णः शमसत्याहिंसादिसात्त्विकभावानां, हरितवर्णश्च जीवनस्य विकासस्य प्रगतेश्च बोधकोऽस्ति। एभ्य इयं प्रेरणा प्राप्यते यद्वयं सदैव स्वराष्ट्रहिताय—'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' स्वार्थं त्यक्तुं तपश्च कर्तुमुद्यता भवेम, दिक्षु विदिक्षु स्वदेशस्य प्रतिष्ठायै वयं सर्वदैव शान्तिनीतिसमर्थकाः, सत्यव्रताः, सदाचारा, अहिंसानुयायिनश्च भवेम, स्वराष्ट्रस्योत्थानाय वयं सत्यमेव जीवनपोष-

काणि तत्त्वानि स्वस्मिन् सम्पाद्य प्रगतिशीला भवेम इति ।

विश्वस्यान्यस्य कस्यापि देशस्य ध्वजे इयद्भव्य-भावप्रेरकाणां तत्त्वानां समन्वयो नास्ति । एवंविधस्य स्वराष्ट्रध्वजस्य वयं सर्वथा आदरं कुर्याम् । वयं तथा प्रयतेमहि यथा एतस्य सम्मानोऽनुदिनं सर्वत्र वर्धेत, तथा च वर्तेमहि यथायं सदैव उच्छ्रितो भवेत् ।

१२/६०

अभ्यासार्थं प्रश्न

१—हमारा अपना ध्वज पहले क्यों नहीं था ? वर्तमान राष्ट्रीय ध्वज कब से अपनाया गया ? उत्तर संस्कृत में दीजिए ।

२—अपने राष्ट्रीय ध्वज के चक्र और तीन वर्ण किन-किन भावों के प्रतीक हो सकते हैं ?

३—अनुवाद कीजिए—

(क) हमें पवित्र विचारों का बनना चाहिए ।

(ख) हमारी सरकार की शांति-नीति विश्व भर में आदर पा रही है ।

(ग) जो व्यक्ति राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान नहीं करता वह राष्ट्र-द्रोही है ।

(घ) भगवान् करें, हमारा तिरंगा झण्डा सदा ऊँचा रहे ।

टिप्पणी

प्रथम पाठ

पूजा-पुष्पाञ्जलिः

श्लोक १—यह बाण-कृत कादम्बरी का प्रथम श्लोक है। बाण महाराज हर्षवर्धन के सभा-पण्डित थे। अतः इनका समय ईसवी सप्तम शताब्दी माना जाता है। प्रस्तुत श्लोक में कवि ने विश्व में एक सत्ता मानकर जगत् की सृष्टि, पालन और विनाश करने वाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव को उसी के तीन रूप माने हैं।

श्लोक २—संस्कृत-महाकाव्यों के सर्वाधिक प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने यह श्लोक रघुवंश काव्य के तेरहवें सर्ग की टीका के आरंभ में लिखा है। इसमें भगवान् राम का गुणानुवाद है।

श्लोक ३—इस श्लोक में भगवान् कृष्ण के भुवन-मोहन रूप का वर्णन करके उन्हीं को परम तत्त्व माना गया है।

श्लोक ४—यह श्लोक जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य की 'सौन्दर्यलहरी' से लिया गया है। इसमें उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की तीनों शक्तियों—सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती—को परब्रह्म परमेश्वर की ही आदिशक्ति के रूप में कहा है।

श्लोक ५—यह श्लोक भी मल्लिनाथ का है और 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य की टीका के आरम्भ में लिखा गया दूसरा श्लोक है। इसमें गणेश जी का विघ्न-विनाशकत्व गुण बड़े ही साहित्यिक ढंग से दिया गया है। इसी से इसका यहाँ संकलन किया गया है। भाषा का लालित्य भी अनुपम है।

श्लोक ६—यह श्लोक सरस्वती की वन्दना का है। उनका अद्भुत माहात्म्य, परम पवित्र रूप सर्वाधिक प्रसिद्ध अलंकार 'वीणा'—सभी एक साथ अत्यन्त संक्षिप्त तथा सरल ढंग से दिये गये हैं। यह श्लोक ब्रह्मसूत्र-शांकरभाष्य के टीकाकार गोविन्दानन्द ने अपनी टीका के आरम्भ में दिया है।

रजोजुषे—रजोगुण वाले। सत्त्ववृत्तये—सत्त्वगुण वाले। तमःस्पृशे—तमोगुण वाले। शल्य—बाण का अग्रभाग, दुःख का कारण। विराम—अन्त। द्रुहिण—ब्रह्मा। आगमविद्—शास्त्रज्ञ। निगम—वेद। जगदालंब—जगत् के अवलम्ब या आश्रय। हेरम्ब—गणेश जी। प्रत्यूहवार्धयः—विघ्नों का समुद्र।

द्वितीय पाठ

हरस्वामी की कथा

यह पाठ सोमदेव के 'कथासरित्सागर' के गद्यात्मक संस्करण से लिया गया है। सोमदेव का समय ईसवी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी माना जाता है।

परिवाद—निन्दा। भिक्षाशनः—भिक्षा से भोजन पाने वाला। प्रत्यायन—विश्वास उत्पन्न करना। क्षम—समर्थ। नामग्राहम्—नाम ले-ले कर। प्रशान्तितः—शान्त किये गये।

तृतीय पाठ

धर्मबुद्धि तथा पापबुद्धि की कहानी

यह कहानी पंचतंत्र से ली गयी है। विष्णुशर्मा नामक विद्वान् ने एक राजा के पुत्रों को कथा द्वारा नीति सिखाने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की थी। कहानियों के इस संग्रह में मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश तथा अपरिक्षितकारक नामक 'पाँच तन्त्र' या भाग होने के कारण ही इसका पंचतंत्र नाम पड़ा। यह ग्रन्थ ईसवी चतुर्थ शताब्दी से पूर्व का है।

प्रभूततरम्—बहुत अधिक। सीदामः—दुःखी होते हैं। रिक्त—खाली। भाण्डम्—बर्तन। दिव्यार्थ—देवता की दुहाई देना। मनीषिणः—बुद्धिमान्। प्रत्यूष—तड़के। वनोद्देश—वन प्रदेश। परिवेष्ट्य—घेर कर। वह्निभोज्यद्रव्यम्—ईंधन।

चतुर्थ पाठ

सार्वभौम धर्म

यह संकलन मनुस्मृति के चतुर्थ अध्याय से लिया गया है। इसमें पुरुष के धर्मों का विस्तृत वर्णन है और अध्याय के अन्त में कहा गया है कि इस प्रकार धर्म का पालन करते हुए त्रिविध ऋण से मुक्त होकर कुटुम्ब का सारा भार पुत्र को सौंप देना चाहिए तथा स्वयं ममत्व-रहित होकर एकान्त में परम श्रेय (कल्याण) का चिन्तन करना चाहिए। यह परम श्रेय आत्म-प्राप्ति में है जिसका विवेचन द्वादश (अन्तिम) अध्याय के अन्तिम श्लोकों में हुआ है। इसलिए आत्म-विषयक श्लोक द्वादश से लेकर जोड़े गये हैं।

समासेन---संक्षिप्त रूप से। विपर्यय--- उल्टा। प्रसक्ति---आसक्ति। संविशेत्---सोना चाहिए। आतुर---रोगी। अजस्रम्---सतत। अनायुष्यम्---आयु घटाने वाला। दारा---स्त्री। गोव्रज---गायों के वाड़े में। ससत्त्व---प्राणियुक्त। अमुत्र---परलोक में। लोष्ठ---ढेला। श्रेयः---कल्याण। किल्विषम्---पाप। अग्र्यम्---श्रेष्ठ। समाहिताः---एकाग्र।

पंचम पाठ

वाल्मीकि-वृत्तान्त

इस पाठ का पूर्ण भाग अध्यात्मरामायण में आये हुए उल्लेख के आधार पर लिखा गया है। उसमें कहा गया है कि वाल्मीकि पहले डाकू थे। पाठ के उत्तर भाग में लौकिक छन्द के प्रथम अवतार तथा रामायण-प्रणयन की चर्चा है। यह भाग भवभूति के उत्तररामचरित के द्वितीय अंक से लिया गया है।

दुर्वृत्त---दुराचारी। लुण्ठन---लूटना। प्राणसंशयः---जान का खतरा। निर्विण्ण---दुःखी। धृति---जीविका। वल्मीकाः---दीमकों की चाली हुई मिट्टी का ढेर। परिस्रावयामास---वहा दिया। संज्ञा---नाम। माध्यन्दिन-

सवनाय—दोपहर के स्नान के लिए। विचेष्टमानम्—तड़पते हुए। दर्शम्—देख-देखकर। करुणाराव—करुण क्रन्दन। श्रावम्-श्रावम्—सुन-सुनकर। अभ्युदैरयत्—कहा। समाः—वर्ष। शाश्वतीः—अनेक। आम्नाय—वेद। भूतभावनः—प्राणियों को उत्पन्न करने वाले। पद्मयोनि—ब्रह्मा। आव्याहृत—स्पष्ट। प्रातिभ—बौद्धिक।

षष्ठ पाठ

रावण को मारीच का उपदेश

यह पाठ वाल्मीकि-कृत 'रामायणम्' से लिया गया है। इसमें मारीच का वह नीतियुक्त उपदेश वर्णित है जो उसने रावण को दिया था, जब रावण ने उससे कपट-मृग बनकर राम को पंचवटी से दूर लिवा ले जाने के लिए निवेदन किया था। राक्षस मारीच के भी मुख से भगवान् राम के विषय में 'विग्रहवान् (मूर्तिमान्)धर्मः' तथा 'सत्यपराक्रमः' इत्यादि शब्द सुनकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके धर्म-राज्य के विषय में उनकी अपनी प्रजा के क्या विचार होंगे।

पथ्य—हितकारी। व्यसन—विपत्ति, दुःख। कामवृत्त—स्वेच्छाचारी। निरंकुश—उच्छृङ्खल। विग्रहवान्—शरीरधारी। वासव—इन्द्र। प्रसभम्—बल-पूर्वक। वि वस्वतः—सूर्य की। सिंहोरस्क—सिंह के समान वक्षःस्थल वाले। अनुव्रता—अनुकूल आचरण वाली, भक्त। हुताश—अग्नि। सुमध्यमा—सुन्दर कटिवाली।

सप्तम पाठ

कपोत की कथा

यह कहानी 'शरणागत शत्रु की भी रक्षा करनी चाहिए'—इस उच्च भारतीय आदर्श को उपस्थित करने के लिए महाभारत के आधार पर लिखी गयी है। इस आदर्श का पोषण करने वाली कपोती के वचन बड़े उदात्त भावों से परिपूर्ण हैं।

मेदुर—चिकना, घना । वनस्पति—वृक्ष । स्कन्ध—मोटी डाल, तना । अवरुह्य—उतर कर । लुब्धक—व्याध । पर्णानि—पत्ते । संदीपयामास—जला दिया ।

अष्टम पाठ

कौशिक-वृत्तान्त

यह पाठ वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में आये हुए विश्वामित्र के उपाख्यान के आधार पर लिखा गया है, और 'प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति' का आदर्श उपस्थित करता है । मुनि वशिष्ठ के ब्रह्मतेज से पराभूत होकर क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न विश्वरथ ने ब्रह्मर्षि बनने का दृढ़ संकल्प किया परतु मानसिक दुर्बलताओं के कारण बहुत काल तक विफल होते रहे, तथापि संकल्प छोड़ा नहीं । अन्त में वे ब्रह्मर्षि होकर ही रहे । तभी विश्वरथ से 'विश्वामित्र' बने और वेद के सारभूत गायत्री-मन्त्र के द्रष्टा हुए ।

मृगया—शिकार । अटितुम्—खेलने के लिए । आयुधानि—शस्त्र । शिविर—डेरा । उपचार—पूजा, स्वागत । यथार्हम्—यथायोग्य । संविधानि—सामग्रियाँ । निर्बन्ध—आग्रह, हठ ।

नवम पाठ

महाभारतामृतम्

इस पाठ में सङ्गृहीत श्लोक महर्षि वेदव्यास-कृत महाभारत से लिये गये हैं । इनमें मनुष्य के जीवन को सुखमय बनाने वाले सत्य, दया, अक्रोध, पराक्रम, दान इत्यादि उत्तम चरित्र-गुणों का तथा उसे दुःखमय बनाने वाले भय, क्रोध, आलस्य, द्रोह, अभिमान इत्यादि दोषों का वर्णन किया गया है । साथ ही यह निवेदन भी किया गया है कि सुख चाहने वाले व्यक्ति को दोष छोड़कर गुणों को ग्रहण करना चाहिए ।

भूति—ऐश्वर्य । तन्द्रा—सुस्ती, क्लान्ति । दीर्घसूत्रता—विलम्ब से

कार्य करना । अनसूया---निन्दा न करना । योग---उपाय, अभ्यास । मृजया---मार्जन या स्नान से । शील---सुचरित । जीवितेन---जीवन से । आनृण्यम्---ऋणी होना । अविप्रवासः---परदेश में न रहना । सम्प्रयोग---व्यवहार । स्वप्रत्यया वृत्ति---मनोनुकूल जीविका । कौल्यम्---कुलीनता । नृशंस---क्रूर । आक्रोसी---बुरा-भला कहने वाला । अवमानी---अपमान करने वाला । रुक्षा---रूखी । रुशती---अप्रिय । महाशन---बहुभोजी । लोकद्विष्ट---सबसे द्वेष रखने वाला । सुमनाः---अच्छे मन वाला । अपत्रपते---लज्जा करता है ।

दशम पाठ

चित्रकूट में राम और भरत की भेंट

यह पाठ बड़ी सरल तथा सरस भाषा में राम और भरत की प्रेममयी भेंट की अनुपम झाँकी दिखाकर भ्रातृभाव का समुज्ज्वल आदर्श उपस्थित करता है ।

वरटा---हंसिनी । अकर्दमानि---पंक-रहित । तीर्थानि---घाट । चमू---सेना । अभिषेणयति---आगे बढ़ता है, सामना करता है । वाष्प---आँसू । दुर्भर---कठिनता से पालने योग्य । कामचारः---स्वेच्छाचारिता । कालानुगुणम्---समय के अनुकूल । अनृतोक्तिः---मिथ्या कथन ।

एकादश पाठ

पण्डित तथा भक्त के लक्षण

इस पाठ का प्रथम भाग महाभारत से तथा द्वितीय भगवद्गीता से लिया गया है । 'पण्डित' शब्द 'पण्डा' (अर्थात् सदसत् का विवेक करने वाली बुद्धि) से बना है और मनीषी, विवेकी या बुद्धिमान् का वाचक है । इसके लक्षणों से मानव-जीवन का वह पूर्ण-विकसित स्वरूप जो प्राचीन भारतीय आचार्यों का अभीष्ट था, सामने आता है । विष्णुभक्त के लक्षणों से जीवन के उस

चरम विकास का स्वरूप सामने आता है जो निवृत्ति-परायण साधु-सन्तों का गन्तव्य है और भारतीय जीवन का प्राण है।

प्रशस्त—शुभ। स्तम्भ—जकड़ जाना, गतिहीन हो जाना। मान्य-मानिता—अपने को बहुत समझना। प्रज्ञान—लक्षण, पहचान। यतात्मा-वशी, अनपेक्ष—किसी से कुछ न चाहने वाला।

द्वादश पाठ

परीक्षित् की कथा

यह पाठ भागवत और महाभारत में आये हुए परीक्षित के आख्यान पर आधारित है। बलवान् प्रारब्ध के कारण शमीक ऋषि के प्रति अपराध कर बैठने पर उनके पुत्र शृङ्गी से तक्षक द्वारा काटे जाने का शाप पाकर धर्मात्मा महाराज परीक्षित पश्चात्ताप करते हुए राज्यकार्य मन्त्रियों पर छोड़ गंगा-तट पर चले गये और वहीं अभयप्राप्ति के लिए भगवान् के अवतारों के विविध चरित व्यास-पुत्र बाल-योगी शुकदेव मुनि से सुने जो 'भागवत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यही इस पाठ में वर्णित है।

ललाटन्तप—प्रचण्ड। आतप—धूप। परीतः—युक्त। पानीयार्थी—प्यासा। कोटि—नोक, अग्रभाग। सरभसम्—वेग-पूर्वक। निष्कृति—तिरस्कार, अपमान। उत्पथगामिनाम्—उल्टे रास्ते चलने वाले। अतिसन्नि-हितम्—अत्यन्त समीप। अव्यभिचारिणी—निश्चल। निष्ठा—भक्ति।

त्रयोदश पाठ

अर्जुन द्वारा की गयी भगवान् कृष्ण की स्तुति

भगवान् श्रीकृष्ण जी ने गीता के दशम अध्याय में अर्जुन से अपनी अनन्त विभूतियों का वर्णन किया है। उसे सुनकर अर्जुन को इस अनन्त-विभूति-सम्पन्न विश्वरूप को देखने की इच्छा होने पर भगवान् ने उसे अपना

विश्वरूप उन्हें दिखाया, उसी को अर्जुन द्वारा की गयी स्तुति एकादश अध्याय में दी गयी है वहीं से यह संकलन किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि सरल होने पर भी यह अत्यन्त सुन्दर है।

पुराण--प्राचीन। सहस्रकृत्वः--हजारों बार। पुरस्ताद्--आगे। प्रसभम्--बिना विचारे। प्रमादात्--भूल से। प्रणयेन--प्रेम-वश। अवहास--उपहास, हँसी। गरीयान्--अत्यधिक पूज्य। ईड्य--वन्दनीय।

चतुर्दश पाठ

जल

यह पाठ महामहोपाध्याय पं० कुप्पूस्वामी शास्त्री के 'भूगोलशास्त्रम्' नामक ग्रन्थ से लिया गया है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भूगोल-विद्या के बहुत से अभिनव विषयों को यथासम्भव सरल तथा सुबोध भाषा में समझाया गया है। 'जल' तो नया तत्त्व नहीं, सृष्टि का आदिम तत्त्व है, जैसा लेखक ने स्वयं इस पाठ में बताया है। परन्तु उसके अनेक अभिनव उपयोग इस वैज्ञानिक युग में हो गये हैं। प्राचीन के उल्लेख के साथ इन्हीं नवीन उपयोगों का वर्णन इस लेख में किया गया है।

निचय--समूह। निर्दिष्ट--कथित, वर्णित। अनुदिवसम्--प्रतिदिन। व्यापृत--निरत, संलग्न। पूत--पवित्र। घन--ठोस। जलसेक--सिंचाई। विपरिवर्तित--परिणत। विप्रकृष्ट--दूर। वाष्पीयशकटाः--भाप से चलने वाली गाड़ियाँ, रेलगाड़ी। वाष्पीयमहानौका--स्टीमर। अनायासेन--बिना परिश्रम ही, सहज ही। तन्त्री--तार। वैद्युत्यान--ट्राम गाड़ियाँ। प्रेरणाय--चलाने के लिए। सन्तापनकाले--गरम होने के समय। औष्ण्य--गर्मी, उष्णता। शैत्य--शीतलता। शिशिरीभवति--ठण्डा हो जाता है। समुद्रोपान्ते--समुद्र के समीप। अपेक्षितान्नातिरिच्येते--आवश्यकता से अधिक नहीं होते। रसतन्त्रज्ञाः--केमिस्ट, रस-शास्त्र जानने वाले। शकल--टुकड़े।

पंचदश पाठ

नीतिरूपी मक्खन

इस पाठ में आये हुए श्लोक नीति-विषयक हैं और महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश, भर्तृहरि-शतक तथा किरात इत्यादि महाकाव्यों से लिये गये हैं। ये श्लोक मानव-जीवन को ऊँचे उठाने वाले अनेक गुणों पर लिखे गये हैं।

नवनीत—मक्खन। भीरुत्व—कायरता। वंश्य—पूर्वज। ह्रेपयन्ति—लज्जा देते हैं। वैकल्य—हीनता। निस्सार—निर्बल। सन्तप्तायसि—आग से लाल हुए लोहे पर। विधुर—विपत्तियुक्त। सांयात्रिक—पोतवणिक, सामुद्रिक व्यापारी। अर्थोष्मणा—धन की गर्मी से।

षोडश पाठ

यज्ञ का घोड़ा

यह पाठ महाकवि भवभूति के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं संस्कृत साहित्य के अत्यन्त उत्कृष्ट नाट्यकाव्य उत्तररामचरितम् से लिया गया है। श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा अश्वमेध में छोड़ा गया घोड़ा सर्वत्र विचरण करता हुआ महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप पहुँचता है। वहाँ क्रीड़ा-रत आश्रम के बटु इस अपूर्व जन्तु को देखकर समीपस्थ कुमार लव से उसका बड़ा विनोदपूर्ण वर्णन करते हैं। बाद में उसके संरक्षकों के साथ विवाद हो जाने पर धनुषों पर वाण भी सन्धानित हो जाते हैं।

पशुसमाम्नाय—पशु-याग-प्रतिपादन वेदभाग। सांग्रामिक—वेद का युद्धकाण्ड। शष्पाणि—हरी घास। शकृत्-पिण्डकान्—लीद, घोड़े का मल। दशकण्ठ—रावण। सन्दीपनानि—उत्तेजक, उभाड़ने वाले। विभीषिका—भय उत्पन्न करना। बटु—ब्रह्मचारी। रोहित—एक प्रकार का मृग। वराक—बेचारा। चापल—चञ्चलता। आयुधीयः—अस्त्रधारी। प्लुत—छलांग।

सप्तदश पाठ

विजय-महोत्सव

यह पाठ पं० मूलशंकर माणिक्यलाल याज्ञिक-कृत अभिनव नाट्यकाव्य 'प्रतापविजयम्' का अन्तिम अंक है। बालकों के अनुकूल बनाने के लिए यत्र-तत्र थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर दिया गया है। महाराणा प्रताप के प्रयत्नशील रहने पर भी मेवाड़-भूमि इतिहास-प्रसिद्ध हल्दी-घाटी के युद्ध के बाद मुगल सम्राट् अकबर के हाथों में चली गयी और राणा को अनुचरों तथा स्वपक्षी सामन्तों के साथ जंगलों की शरण लेनी पड़ी। वहीं रहते हुए महाराणा अपनी जन्मभूमि को स्वतंत्र करने का भगीरथ-प्रयत्न करते रहे और वर्ष बीतते ही बीतते कृतकार्य हो गये। फिर अकबर ने राणा के साथ सन्धि करके उनकी स्वतंत्रता स्वीकार कर ली। मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ में मनाये जाने वाले इसी विजय-महोत्सव का वर्णन इस पाठ में है।

एकलिङ्ग—शिव जी। विद्राव्य—भगाकर। केसरी—सिंह। विश्रुत—विख्यात। पौरजानपदान्—नागरिक तथा ग्रामीण। कुट्टिमाः—फर्श। नवविरचितराग—नए-नए रँगे हुए। आलेख्य—चित्र। चित्रास्तराणि—रंग-विरंगे बिछौनों (कालीनों) वाले। वासितानि—धूप से सुगन्धित। अङ्गनानि—आँगन। परिजिहीर्षुः—बचाने की इच्छा से। प्रकृत्यनुरागायत्ताः—प्रजा की राजभक्ति के अधीन। आटविक—जंगल में रहने वाली जातियाँ। राजनिष्ठा—राजभक्ति। राजशासन—प्रमाण-पत्र। उद्धृतर्णका—चुका दिया गया है ऋण जिसका, ऐसी। आम्नायार्थप्रसितमया—वेद में दत्तचित्त। समिद्ध—प्रदीप्त। कारवः—शिल्पी। कारु—शिल्प।

अष्टादश पाठ

गान्धी जी का सत्याग्रह-मार्ग

यह स्व-रचित पाठ महात्मा गान्धी के सत्याग्रह आन्दोलन पर है।

इसमें यह बताया गया है कि ये अभिनव भारत-राष्ट्र के जन्मदाता—उसके पिता थे। टुकड़ों में बँटा हुआ, पराधीन भारत उन्हीं के भगीरथ-प्रयत्न से एक तथा स्वतंत्र होकर फिर से राष्ट्र बन सका।

जनयिता—उत्पन्न करनेवाला, पिता। विघटिताः—फूटे हुए। सङ्घटन—संगठन। उप्त्वा—बोकर। प्ररोहयति स्म—अंकुरित किया। कृते—लिये। वयन—बुनना। अब्द—वर्ष। दापयितुम्—दिलाने के लिए। आधारभूत्—बेसिक। अस्पृश्यता—छुआछूत।

ऊनविंश पाठ

समस्या-पूर्ति

यह पाठ बल्लालसेन (चौदहवीं शताब्दी) द्वारा विरचित भोज-प्रबन्ध से लिया गया है। इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व बहुत कम है क्योंकि इसके लेखक ने कालिदास, बाण, माघ, भवभूति इत्यादि विभिन्न काल के संस्कृत कवियों को भोज का समकालीन बताया है, जो सर्वथा इतिहास-विरुद्ध है। हाँ, इससे मनोविनोद अच्छा होता है,। प्रस्तुत पाठ में यह दिखाया गया है कि एक ही भाव को लेकर कवि-हृदय कितने प्रकार का काव्य उपस्थित कर सकते हैं। 'महापुरुषों की कार्यसिद्धि उनके साहस और पराक्रम से होती है, साधनों से नहीं'—इसी भाव का प्रतिपादन यहाँ चार प्रकार से बड़ी ही सरलता एवं सहृदयता के साथ किया गया है।

गजेन्द्रवदन—गणेश जी। भूर्ज—भोजपत्र। पाथोधि—समुद्र। कुहर—गड्ढा, छेद। सत्त्व—पराक्रम। यमिताः—बँधे हुए। उपकरण—सामग्री। विपक्ष—शत्रु। पदातिः—पैदल। स्नुषा—पुत्र-वधू। मौर्वी—प्रत्यंचा। अनङ्ग—कामदेव। हिमकर—चन्द्रमा।

विंश पाठ

विद्युत्

यह पाठ भी स्वयं लिखित है। विद्युत् (बिजली) की आज इतनी उप-

योगिता हो गई है कि इसके बिना आधुनिक जीवन ही शून्य-सा लगता है। तार-बेतार, बिजली का प्रकाश, सिनेमा, बड़ी-बड़ी मशीनें—अर्थात् काम और मनोरञ्जन दोनों की ही वस्तुएँ विद्युत् से चलाई जा रही हैं। यह पाठ इसकी उपयोगिता और उत्पादन के ढङ्ग पर लिखा गया है।

आविष्कार—खोज। अन्धतमसे—घने अन्धकार में। विद्युद्व्यजनैः—बिजली के पंखों से। चलचित्रप्रदर्शन—सिनेमा-शो। दूरध्वनि—टेलीफोन। अयोमार्गगन्त्र्यः—रेलगाड़ियाँ। उद्योगशाला—फैक्ट्री, कारखाना। यन्त्राणि—मशीनों। रूक्ष—रूखे-सूखे। कंकतिका—कंघी। विपज्जनिका—खतरनाक। स्पन्दनधारा—ए० सी० करेन्ट। तन्त्र्य—तार। संजयन्ति—चिपका लेते हैं। उच्छ्रित-स्थानात्—ऊँचाई से। विद्युच्छक्ति योजनाः—पावर-प्रोजेक्ट।

एकविंश पाठ

रामचन्द्र जी द्वारा सीता जी का फिर से अपनाया जाना

यह पाठ भवभूति-कृत 'उत्तररामचरितम्' नामक नाटक से लिया गया है। यह उसका अन्तिम अंक है जो संक्षिप्त कर दिया गया है। इसमें यह वर्णित है कि सीता जी को शुद्ध प्रमाणित करने के लिए वाल्मीकि जी ने अपने आश्रम में स्वरचित नाटक का अभिनय कराया जिसमें उन्होंने चराचर समस्त लोक को आमन्त्रित किया। अयोध्यापुरी के लोग भी थे। अपनी भूलों पर लज्जित लोक की अनुमति तथा भगवती अरुन्धती के आदेश से राम ने सीता जी को फिर से अपनाया। इस अन्तर्नाटक में अद्भुत तथा करुण रसों का अद्भुत परिपाक सरल भाषा में हुआ है।

भूतग्राम—प्राणिसमूह। प्रयुज्यमाना—अभिनय की जाती हुई। आतोद्य-स्थान—रंगशाला। भूतार्थवादी—सत्य कथन करनेवाले। आर्ष—ऋषि की, दिव्य। अवधातव्यम्—ध्यान देने योग्य। श्वापद—जंगली जानवर। प्ररोह—अंकुर। पाकाभिमुख—फल देने को प्रस्तुत। विलय—विनाश।

अभ्यनुज्ञात---बोधित । शालीनशीलता---लज्जालुता । पौर---पुरवासी, नागरिक । जानपद---ग्रामवासी । वैश्वानर---अग्नि । निर्भर्त्सित---बुरा-भला कहते गये । कृत्स्न---सम्पूर्ण । प्रतिकृति---प्रतिमा । हिरण्मयी---सोने की । कृति---मूलरूप । (Original) । परिमार्ष्टुम्---परिमार्जन करना, दूर करना । श्रेयांसि---कल्याण । मङ्गल्या---कल्याण-कारिणी ।

द्वाविंश पाठ

शबर-सेनापति

यह पाठ सप्तम शताब्दी के कवि बाण भट्ट द्वारा रचित 'कादम्बरी' नामक संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गद्यकाव्य से लिया गया है । इसमें बर्बर शबरों के जङ्गली जीवन का अच्छा चित्र खींचा गया है ।

आयसमयम्---लोहे का बना हुआ । कृतान्त---यम । सहोदर---सगा भाई । मोहप्रायम्---अज्ञानमय । गर्हित---निन्दित । पिशित---मांस । मधु---मदिरा । शिवारुतम्---शृगाली का शब्द । कौशिकाः---उल्लू । शकुनिः---पक्षी । अटवी---जंगल । आपानक---पानगोष्ठी । विषदिग्ध-मुखाः---विषाक्त मुख या अग्र भाग वाले । योषित्---स्त्री । अपनिनीषुः---दूर करने का इच्छुक । पुट---दोना । दिगन्तरम्---भिन्न दिशा ।

त्रयोविंश पाठ

महाराज दिलीप की गोसेवा

यह पाठ संस्कृत भारती के अमर कलाकार एवं सरस्वती के वरद पुत्र कालिदास के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'रघुवंशम्' के द्वितीय सर्ग से संगृहीत है । महाराज दिलीप की गो-सेवा का जीता-जागता चित्र इसमें अंकित है । स्वतंत्र भारत में वांछनीय गो-सेवा के लिए इसमें अच्छा संकेत प्राप्त होता है ।

अधिपः---राजा । माल्य---फल । पांसु---धूल । अपांसुला---पतिव्रता, सती-साध्वी । धुरि---आगे । सौरभेयी---कामधेनु । सुरभि---सुन्दर ।

कंडूयन—खुजलाना । दंश—डाँस, मच्छर इत्यादि । स्वैरगतैः—स्वेच्छागमन से । तिष्ठेदुषीम्—बैठी हुई । उपोषित—उपवास करने वाली, भूखी । पयस्विनी—खूब दूध देने वाली । निषण्णा—बैठी हुई । दोग्ध्री—दूध देने वाली । बलि—उपहार । अन्तिक—समीप । अन्वास्य—अनन्तर बैठकर ।

चतुर्विंश पाठ

पञ्चवर्षीय योजना

यह पाठ स्वलिखित है । इसमें पंचवर्षीय योजना का स्वरूप तथा उसमें होने वाले लाभों का वर्णन है । अपनी स्वदेशी सरकार देश की उन्नति के लिए क्या कर रही है—यह इसमें बताने का प्रयत्न किया गया है ।

नियत—निश्चित । वैयक्तिक—व्यक्तिगत । खिस्तीयाब्द—अंग्रेजी वर्ष, ईसवी सन् । पौर्वापर्य—क्रम । बन्ध—बाँध । कुल्या—नहर । सेचन—सिंचाई । प्लावन—बाढ़ । उद्योगशाला—कारखाना । नाव्य—नाव चलाने योग्य । पण्य—सौदा, माल । यातायात—आना-जाना । सौकर्येण—सरलतापूर्वक । साकल्येन—सम्पूर्ण रूप से ।

पंचविंश पाठ

राष्ट्र-ध्वज

यह पाठ भी स्व-लिखित है । राष्ट्र-ध्वज क्या होता है ? भारत का राष्ट्रध्वज क्या और किस प्रकार का है, उससे हमें क्या प्रेरणा मिलती है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर की दृष्टि से यह निबन्ध लिखा गया है ।

भणिति—कथन । अपहारयति—खो देता है । राष्ट्रिक—नागरिक । पक्ष—दल, पार्टी । पाश—बन्धन, शृंखला । संविधान—कानून । पिण्याक—केसर । भुवनभास्कर—जगत् को प्रकाशित करने वाले अर्थात् सूर्य । अनुदिनम्—सर्वदा । उच्छ्रित—ऊँचा ।